दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९५ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २४ अंक नं० ११

जीव का सच्चा जीवन

जिसने जीव की शुद्ध चैतन्यसत्ता का स्वीकार नहीं किया और अन्य के द्वारा उसका जीवन (उसका स्थायित्व) माना, उसने जीव के स्वाधीन जीवन का घात किया है, स्वयं अपना भावमरण किया है। उसे अनंत शक्तिवान स्वाधीन जीवन बतलाकर आचार्यदेव 'अनेकांत' द्वारा सच्चा जीवन देते हैं। संतों ने करुणा करके 'भावमरण' मिटाने के लिये अनंत आत्मशक्तिरूपी संजीवनी प्रदान की है – जिसके द्वारा अविनाशी सिद्धपद प्राप्त होता है। वह जीव का सच्चा जीवन है, वह सुखी जीवन है।

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

मार्च १९६९ वार्षिक मूल्य ३) रुपये (२८७) एक अंक २५ पैसा [फाल्गुन सं० २४९५

विज्ञप्ति

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रवचन सुनने एवं धार्मिक शिक्षण शिविर में अभ्यास करने के लिये अनेक मुमुक्षु भाई-बहिन सोनगढ़ आते रहते हैं।

हिन्दी भाषी मुमुक्षुओं के लिये धर्मशाला बनायी गई थी, वह अब काफी छोटी पड़ने लगी है। इसलिये ट्रस्ट की वार्षिक मीटिंग में एक योजना बनायी गई है। जिसमें वर्तमान धर्मशाला पर एक मंजिल और बनाने का विचार है। जो महानुभाव ४०००) चार हजार रुपये दान देंगे, उनके नाम का एक कमरा बनवाकर उसमें दाता के नाम की तख्ती लगायी जायेगी। एक कमरे के लिये दो व्यक्ति मिलकर भी दान दे सकते हैं। तथा छोटी रकमें भी स्वीकार की जायेंगी और दाताओं के नाम बोर्ड पर लिखाये जायेंगे। योजना का प्रारम्भ हो चुका है। पहले कमरे के लिये श्री नवनीतलाल चुनीलाल जवेरी बम्बई (प्रमुख-श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंडल ट्रस्ट, सोनगढ़) ने ४०००) चार हजार रुपये की घोषणा की है। कमरे की मालिकी ट्रस्ट की होगी, परंतु दाताओं को या उनके सगे-संबंधियों को उतरने में प्राथमिकता दी जायेगी।

—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्र० गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

मार्च : १९६९ ☆ फाल्गुन, वीर नि०सं० २४९५, वर्ष २४ वाँ ☆ अंक : ११

संतों का उपदेश

पूज्य स्वामीजी एक ही बात कहते हैं कि—भाई, मनुष्यभव में ऐसा सुअवसर तुझे प्राप्त हुआ है, तो उसमें आत्मा का हित कर लेना चाहिए। धन की प्राप्ति के लिये कितना परेशान होता है? और कितना प्रयत्न करता है? —तो हे भाई, चैतन्य का परमार्थसुख कैसे प्राप्त हो?—अपने में ही जो सुख विद्यमान है, वह अपने अनुभव में किसप्रकार आये? उसके लिये तू उद्यम कर। राग से भिन्न अपना चैतन्यतत्त्व क्या है, उसके अनुभव बिना अन्य सब निरर्थक है, उसमें आत्मा का कल्याण नहीं। आत्मा का कल्याण करने के लिये जीव-अजीव भिन्नता को समझकर भेदज्ञान कर। भाई, ऐसा अमूल्य अवसर मिला है तो आत्मा की रुचि करके आत्महित को साध ले। संतों का बारम्बार यही उपदेश है।

तुम्हारे पग-पग पर गुरुदेव, बह रही आतमरस की धार

पूज्य गुरुदेव श्री कानजीस्वामी के साथ सोनगढ़ से बम्बई तक के आनन्दकारी मंगल-विहार के समाचार यहाँ दिये जायेंगे। स्वयं कल्याणकारी तथा कल्याण के हेतु विहार करते हुए पूज्य स्वामीजी का प्रभाव अद्भुत है। जहाँ उनकी उपस्थिति होती है, वहाँ एक छोटे-से समवसरण जैसा वातावरण उपस्थित हो जाता है। जगह-जगह हजारों स्त्री-पुरुष तथा बालक उनकी एक घण्टे तक बहनेवाली अध्यात्मरसधारा का पान करके अपूर्व मानसिक शांति का अनुभव करते हैं और प्रभावित होते हैं। पूज्य गुरुदेव के साथ रहकर निरंतर उपदेश झेलकर उसका आलेखन करते हुए आत्मा कृतार्थता का अनुभव करता है... और इसप्रकार ठेठ सिद्धालय तक गुरुदेव के साथ ही रहना है। **—ब्रह्मचारी हरिलाल जैन**

फाल्गुन कृष्णा ६ तारीख ८-२-६९ के प्रातःकाल सोनगढ़ में विदेहीनाथ श्री सीमंधर भगवान के भावपूर्वक दर्शन करके गुरुदेव ने मांगलिक सुनाते हुए कहा कि—इस आत्मा को पंचपरमेष्ठी भगवंतों की शरण है... वह शरण व्यवहार से है; निश्चय से अपना आत्मा 'पाँच बोलों द्वारा पूर्ण प्रभु'—ही अपने लिये शरणभूत है। आत्मा दर्शन-ज्ञानस्वरूप है; वह स्वधर्म से अभिन्न तथा परद्रव्यों से भिन्न है, इसलिए एक है; एक होने से शुद्ध है; शुद्ध होने से ध्रुव है और ध्रुव होने से वही शरणभूत है। ऐसे आत्मा को अन्य किसी का अवलंबन नहीं है। ऐसे पाँच बोलों द्वारा पूर्ण प्रभु को जानकर आत्मस्वभाव का अवलंबन लेना, वह सच्ची शरण है, वह सच्चा मंगल है—ऐसे मंगल सहित पूज्य गुरुदेव ने प्रस्थान किया।

स्वाध्यायमंदिर के बाहर निकलते हुए क्षणभर के लिये वे सीढ़ियों पर रुक गये और ऊपर दृष्टि करके दर्शन किये।—किनके? अपने प्रिय सीमंधरनाथ के। ऊपर आकाश में

मानस्तंभ में विराजमान सीमंधरनाथ के दर्शन करके मंगलप्रस्थान किया... मार्ग में भी उसी 'पाँच भावों से परिपूर्ण महान आत्मा' का स्मरण करते-करते बोटाद आ पहुँचे। वहाँ भगवान श्रेयांसनाथ के दर्शन करके और बोटाद के भक्तजनों को आनंदित करके तुरंत प्रस्थान किया... थोड़ी दूर में राणपुर पहुँचे और भक्तों ने उमंगपूर्वक गुरुदेव का स्वागत किया। भगवान महावीर प्रभु के दर्शन करके गुरुदेव ने मांगलिक सुनाया। दोपहर को प्रवचन में श्री समयसार में से प्रथम मंगल-श्लोक 'नमः समयसाराय'... पढ़ा; और उस पर विवेचन करते हुए कहा कि—भाई! जिसे जानने से ज्ञाता को आनंद हो, ऐसा यह आत्मा है। आत्मा अंतर्मुख होकर जब स्वयं अपने को जानता है, तब उसे सच्चा ज्ञान और सुख होता है। अरे, स्वयं अपने को न जाने, उसे सुख कैसा? और ज्ञान कैसा? भाई, ऐसा अवसर प्राप्त हुआ, उसमें आत्मा को जान। वही एक जानने योग्य है। ध्रुव अविनाशी स्वभाव के अवलंबन से मोक्षपुरी की ओर जाता हुआ पथिक जीव, बीच में वृक्ष की छाया की भाँति संसर्ग में आनेवाले रागादि परभावों को अपना नहीं मानता, मैं उस छायारूप (रागरूप) हो गया, ऐसा वह नहीं मानता, परंतु मैं ज्ञानस्वभाव से ध्रुव रहनेवाला हूँ—ऐसा अनुभव करता है। ऐसा अनुभव तथा ऐसा ज्ञान, वह आनंदकारी है, इसके सिवा अन्यत्र कहीं आनंद नहीं है; संयोग तो सब जीव के लिये अध्रुव हैं, उनकी शरण नहीं है।

फाल्गुन कृष्णा सप्तमी रविवार (तारीख ९-२-६९) प्रातःकाल स्वामीजी राणपुर से अहमदाबाद पधारे और स्थानीय तथा अनेक नगरों से आये हुए मुमुक्षुओं ने उमंग सहित स्वामीजी का भव्य स्वागत किया... स्वागत-यात्रा में दो हाथियों सहित हजारों नर-नारियों ने भाग लिया। मार्ग में श्री जिनमंदिर के दर्शन करते हुए पूज्य स्वामीजी 'पारसनगर' (सारंगपुर) में पहुँचे और विशाल भव्य प्रतिष्ठामंडप में मांगलिक सुनाते हुए कहा कि—हे धर्म जिनेश्वर! अर्थात् परमार्थतः अतीन्द्रिय ज्ञान-आनंद से परिपूर्ण आत्मा, मुझे तेरा रंग लगा है; उस रंग में भंग नहीं पड़ेगा... आत्मा का रंग लगाकर उसे साधने के लिये जागृत हुआ, उसमें अब बीच में दूसरा रंग नहीं लगेगा—ऐसी हमारी टेक है; हम तीर्थंकरों के कुल के हैं, हमारी टेक है कि चैतन्य के रंग में बीच में दूसरा रंग नहीं लगने देंगे। इसप्रकार अप्रतिहतभावरूप मंगलाचरण किया।

नगर के मध्य घनी बस्ती में प्रतिष्ठा-महोत्सव का विशाल मंडप शोभायमान हो रहा

था। अहमदाबाद का विशाल जिनमंदिर भी नगर के बीचोंबीच है, जिसके निर्माण में करीब छह लाख रुपये की लागत आने का अंदाज है। मंदिर का कुछ निर्माण-कार्य शेष था, जो तेजी से चल रहा था।

पारसनगर के विशाल मंडप में प्रतिदिन प्रातःकाल 'श्री समयसार कर्ताकर्म अधिकार' पर तथा दोपहर को श्री 'पद्मनंदिपंचविंशतिका' में से ऋषभजिनस्तोत्र पर पूज्य स्वामीजी के प्रभावशाली प्रवचन होते थे। प्रारंभिक दिनों में रात्रि को तत्त्वचर्चा भी होती थी। प्रत्येक कार्यक्रम में राजधानी की जनता विशाल संख्या में भाग लेती थी। सब लोग पंच कल्याणक-महोत्सव की आतुरतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। फिर तो फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी आयी और पंच कल्याणक का मंगल प्रारंभ हुआ।

* * *

गुजरात की राजधानी में जैनधर्म का जयजयकार

अहमदाबाद नगर में अभूतपूर्व पंच कल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव

अहमदाबाद नगर... गुजरात की राजधानी... जहाँ १६ लाख की आबादी में करीब सवा लाख जैन हैं। शायद भारत में जैनियों की सबसे अधिक संख्या इस नगर में होगी।—ऐसा अहमदाबाद उन दिनों विशेषरूप से शोभायमान हो उठा था। खाड़िया मुहल्ले में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा निर्मित अति विशाल, ५६ फुट ऊँचे शिखरयुक्त भव्य जिनमंदिर से नगर की शोभा बढ़ गई थी। जिनालय में मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान हैं; तदुपरांत भव्य कमल पर विराजमान श्री आदिनाथ भगवान की साढ़े पाँच फुट ऊँची पद्मासन प्रतिमा की भव्य मुद्रा तो देखते ही बनती है। इन प्रतिमाजी का वजन एक टन (करीब ५६ मन) है और सवा तेरह हजार रुपये की लागत आयी है। गुजरात में जिसप्रकार अहमदाबाद नगर सबसे विशाल है, उसीप्रकार यह प्रतिमाजी भी विशाल हैं। प्रतिष्ठा-महोत्सव का प्रारंभ फाल्गुन कृष्णा १३ से प्रारम्भ होकर फाल्गुन शुक्ला ५ को समाप्त हुआ... अहमदाबाद नगर जैनधर्म के जय-जयकार से गूँज उठा। देश के कोने-कोने से अनेक मुमुक्षु यह महोत्सव देखने के लिये एकत्रित हुए थे। अति अल्प समय में अहमदाबाद के मुमुक्षुओं ने दिन-रात काम करके भव्य महोत्सव की तैयारी पूर्ण की थी।

एक ओर पूज्य स्वामीजी प्रतिदिन अंतर के चैतन्य परमात्मा का स्वरूप समझाते थे, तो दूसरी ओर परमात्मा की प्रतिष्ठा का भव्य उत्सव चलता था। महोत्सव की मंगलविधि का प्रारंभ हुआ—फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी के दिन।

फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी के प्रातःकाल मंगल मंत्रजाप्य का प्रारंभ हुआ और जिनमंदिर से भव्य रथयात्रापूर्वक श्री जिनेन्द्र भगवान को 'पारसनगर' स्थित प्रतिष्ठा-मंडप में विराजमान किया। सारंगपुर दरवाजे के निकट मैदान में पारसनगर की भव्य रचना की गई थी; सुसज्जित विशाल मंडप की शोभा अद्‌भुत थी। रात्रि के समय बिजली की रंगबिरंगी रोशनी में तो यह अत्यधिक शोभायमान हो उठता था। जब श्री जिनेन्द्र भगवान मंडप में पधारे, तब तो वास्तव में समवसरण का स्मरण हो रहा था। हजारों श्रोताजन पूज्य स्वामीजी के श्रीमुख से आत्मा की प्रभुता का श्रवण करते थे।

प्रवचन के बाद पारसनगर के प्रांगण में सेठश्री पूनमचंद मलूकचंद के हस्त से ध्वजारोहण हुआ... और प्रतिष्ठा-मंडप में पंच परमेष्ठी भगवंतों की पूजा प्रारंभ हुई। सायंकाल जिनेन्द्र-अभिषेकपूर्वक उस पूजनविधान की पूर्णाहुति हुई। रात्रि को बालकों ने तत्त्वचर्चा पूर्ण एक संवाद प्रदर्शित किया था।

फाल्गुन कृष्णा १४ के दिन प्रातःकाल मंगलसूचक नांदीविधान की विधि हुई। उस विधि में सौ. मुक्ताबहिन (जो तीर्थंकर की माताजी बनी थीं) के हाथ से प्रतिष्ठावेदी पर मंगल-कलश की स्थापना हुई थी। तत्पश्चात् गुरुदेव के आशीर्वादपूर्वक माता-पिता, इन्द्र और कुबेरादि की स्थापना हुई। पूज्य स्वामीजी ने प्रसन्नतापूर्वक मंगलाचरण सुनाकर सबको आशीर्वाद दिया। प्रतिष्ठा-महोत्सव में कुल १६ इन्द्र तथा इन्द्राणियों की स्थापना हुई थी, जिनमें प्रथम दो—सौधर्म तथा ईशान इन्द्रों के रूप में सेठ श्री पूनमचंद मलूकचंद शाह तथा श्री जयंतीलाल नथुभाई थे। पिता समुद्रविजय तथा माता शिवादेवी बनने का सौभाग्य भाई श्री नवलचंद जगजीवन तथा उनकी धर्मपत्नी सौ. मुक्ताबेन को प्राप्त हुआ था। गुरुदेव का प्रवचन समाप्त होते ही भाई श्री नवलचंद तथा सौ. श्री मुक्ताबेन ने खड़े होकर पूज्य स्वामीजी के समक्ष आजीवन-ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ली थी। पश्चात् इन्द्रप्रतिष्ठा का भव्य जुलूस निकला और इन्द्रों ने भगवान की पूजा की। दोपहर को मुक्तिकानयन तथा अंकुरारोपण विधियाँ हुई थीं। रात्रि को बालकों ने ज्ञान-वैराग्यभावना से ओतप्रोत सुंदर नाटक प्रदर्शित किया था।

फाल्गुन कृष्णा अमावस्या के प्रातःकाल पूज्य स्वामीजी का प्रवचन पूर्ण होते ही इंद्रों ने नौ देवों का पूजन (यागमंडलविधान) किया था, उसमें अरिहंत (तीनों चौबीसीं के तीर्थंकर तथा विदेहक्षेत्र के बीस तीर्थंकर), सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनालय, जिनबिम्ब, जिनवाणी और जिनधर्म—इन नौ देवों का पूजन होता है। दोपहर के बाद जिनमंदिर की शुद्धि के लिये जल भरने को जलयात्रा निकली थी और रात्रि को गर्भ-कल्याणक का पूर्वदृश्य दिखाया गया था। पंच कल्याणक श्री नेमिनाथ भगवान के हुए थे। प्रथम मंगलाचरण के पश्चात् जयंत विमान में नेमिनाथ भगवान का जीव विराजमान है, वह दृश्य दिखलाया गया था; वहाँ छह महीना आयु शेष रहने पर माता-पिता के आँगन में देवों द्वारा रत्नवृष्टि; कुमारी देवियों द्वारा माताजी की सेवा, इन्द्रों द्वारा माता-पिता का सन्मान, माताजी को १६ मंगल-स्वप्नों द्वारा तीर्थंकर भगवान के जन्म की मंगल-सूचना आदि दृश्य बतलाये गये थे। यह मंगलविधि देखने के लिये पारसनगर में लगभग दस हजार दर्शक इकट्ठे हुए थे।

फाल्गुन शुक्ला एकम के प्रातःकाल माताजी के साथ कुमारी देवियों की तत्त्वचर्चा, १६ मंगल स्वप्नों का सर्वोत्तम फल, समुद्रविजय महाराजा की सभा में आनंद तथा इंद्रलोक में भी आनंद आदि भाव प्रदर्शित किये गये थे। दोपहर को जिनमंदिर में वेदीशुद्धि, ध्वज-कलश शुद्धि की विधियाँ हुई थीं। जिनमंदिर का निर्माणकार्य यद्यपि चल रहा था, परंतु जो भाग तैयार हो चुका था, उससे जिनमंदिर की भव्यता एवं विशालता की प्रतीति होती थी। इस जिनमंदिर के साथ अहमदाबाद में कुल ८ जिनालय हुए हैं; कुछ मंदिर तो विशेष प्राचीन हैं। इस मंदिर से अहमदाबाद का गौरव बढ़ेगा। रात्रि को अजमेर की भजन-मंडली द्वारा भजन एवं नृत्य-गान का कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया था।

फाल्गुन शुक्ला दोजः—आज के सुप्रभात में स्वर्ग में सौधर्म इन्द्र का सिंहासन अचानक कंपायमान हो उठा और मंगल घंटनाद होने लगा, शंखध्वनि से वातावरण गूँज उठा, वाद्य बजने लगे... इसप्रकार अनेक मंगलसूचक चिह्नों द्वारा भरतक्षेत्र में नेमिनाथ भगवान के जन्म की सूचना पाकर सौधर्म इन्द्र एवं इन्द्राणी ऐरावत हाथी पर देव-देवियों सहित आ पहुँचे और नगरी की प्रदक्षिणा की... सर्वत्र आनंद का वातावरण छा गया। समुद्रविजय महाराजा के दरबार में भी मंगल बधाईयाँ हो रही थीं... अहमदाबाद नगर में मानो आज भगवान का जन्मोत्सव होने से हर्षोल्लास छा गया था। माताजी की गोद से नेमकुँवर भगवान को लेकर

इन्द्राणी ने इन्द्र को दिया और गाजेबाजे के साथ भगवान के जन्मोत्सव का विशाल जुलूस मेरुपर्वत की ओर बढ़ने लगा... नगर के हजारों लोग आश्चर्यसहित देख रहे थे कि—अहा, अपने नगर में यह क्या हो रहा है ? कितना भव्य जुलूस है !—इसप्रकार नगर को आनंदाश्चर्य में निमग्न करता हुआ वह भव्य जुलूस मेरुपर्वत पर (प्रोपायटरी स्कूल के प्रांगण में) आ पहुँचा और भगवान के जन्माभिषेक का दृश्य देखकर सब लोग अत्यंत हर्षित हुए।....वाह प्रभु ! यह आपका अंतिम अवतार है !! अभी केवलज्ञान की प्राप्ति तो तीन सौ वर्ष बाद होगी, परंतु आप इसी काल जन्मरहित हो गये। जन्मरहित भगवान का जन्माभिषेक कैसा आश्चर्यकारी है ! जन्माभिषेक के पश्चात् जुलूस पारसनगर में आया और वहाँ इन्द्रों ने ताण्डवनृत्य द्वारा अपना आनंदोल्लास व्यक्त करके माता-पिता का सन्मान किया कि—हे रत्नकूखधारिणी माता ! आपने जगत को मोक्षमार्ग बतलानेवाला दीपक प्रदान किया।

सायंकाल—प्रवचन के पश्चात् बालप्रभुजी को पालने में झुलाने की विधि हुई... हजारों हाथ भगवान को झुलाकर पावन हुए। उस समय का दृश्य सचमुच दर्शनीय था। रात्रि को भगवान की राजसभा का दृश्य बतलाया गया था। राजसभा में देश-देश के राजा आकर भेंट धरते थे... श्रीकृष्ण और बलभद्र जैसे भी आनंद से नाच उठे थे... एक यूरोपियन यात्री ने यह दृश्य देखकर खूब आश्चर्य व्यक्त किया था।

इधर जूनागढ़ की राजकुमारी राजुल के साथ नेमिनाथ भगवान के विवाह की तैयारियाँ चलने लगीं... बारात का दृश्य अद्‌भुत था। राजुल अपने महल के झरोखे से बारात का दृश्य देखती है। भगवान नेमिनाथ अपने रथ में बैठकर जा रहे हैं और मार्ग में पशुओं का करुण चीत्कार सुनकर अपने सारथी से पूछते हैं कि इन पशुओं को किसलिये घेरा गया है ? सारथी से सारा वृत्तान्त सुनकर भगवान नेमिनाथ को वैराग्य उत्पन्न होता है और सारथी से कहते हैं कि रथ को मोड़ दो... अब मैं विवाह नहीं करूँगा। उससमय का भगवान नेमिनाथ और सारथी का संवाद, तथा राजुल-नेमिनाथ का संवाद और भगवान का अडिग निश्चय... आदि दृश्य रोमाचंक थे। जिन्हें देखकर अनेक स्त्री-पुरुषों की आँखों से आँसू बह रहे थे।

फाल्गुन शुक्ला तृतीया के प्रातःकाल ही लोकांतिक देव आ पहुँचे और भगवान की स्तुति करके उनके वैराग्य की अनुमोदना की... भगवान वन की ओर चल दिये... दीक्षायात्रा अद्‌भुत थी। गुजरात-सौराष्ट्र में आज से लगभग ८५००० वर्ष पहले जो कल्यणक हुए थे, उन्हें

आज देखकर गुजरात धन्य हुआ... दीक्षावन में (कांकरिया के किनारे, व्यायामशाला के प्रांगण में) भगवान ने दीक्षा अंगीकार की... संसार को छोड़कर शुद्धोपयोग में लीन हुए और साक्षात् मोक्षमार्गरूप परिणमित हुए... धन्य है उन मुनिराज को... धन्य है उन रत्नत्रयसहित चार ज्ञानधारी सन्त को! उन नेमि मुनिराज के दर्शनों से मानों सब वैराग्यरस में डूब गये... पश्चात् भक्तिसहित पूजा की और मुनिराज तो वन में अंतर्धान हो गये। दीक्षावन में पूज्य स्वामीजी ने भगवान की मुनिदशा का स्वरूप समझाते हुए वैराग्यपूर्ण प्रवचन किया था... और मुनिदशा की भावना भायी थी... पूज्य स्वामीजी ने अपने प्रवचन में कहा कि—देखो, आज भगवान ने दीक्षा लेकर मुनिदशा अंगीकार की है... भगवान की भावना थी कि इसी भव में पूर्णानंद की प्राप्ति करूँगा... वह भावना सफल करने के लिये आज भगवान ने मुनिदशा अंगीकार की है। भगवान 'नमो सिद्धाणं...' सिद्धों को नमस्कार करके आत्मध्यान में लीन हुए और उसी समय शुद्धोपयोगसहित सातवें गुणस्थान में आरोहण कर चौथा मनःपर्ययज्ञान प्रगट किया। शरीर से भिन्न चैतन्य का ज्ञान तो पहले से था ही... अनुभव भी था; परंतु आज तो साक्षात् चारित्ररूप मुनिदशा प्रगट की।

इस वैराग्य के प्रसंग पर तीन-चार सद्गृहस्थों ने पूज्य स्वामीजी के समक्ष सपत्नीक ब्रह्मचर्य-प्रतिज्ञा ग्रहण की थी। दीक्षा के पश्चात् केशक्षेपण कांकरिया तालाब में हुआ था। रात्रि को वैराग्यपूर्ण भक्ति-भजन हुए थे और अकलंक नाटक अजमेर मंडली की ओर से प्रदर्शित किया गया था।

फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी के प्रातःकाल पूज्य स्वामीजी का प्रवचन पूर्ण होते ही नेमि मुनिराज को आहारदान की विधि हुई। मुनिराज नगरी में पधारते हैं और वरदत्तराजा उन्हें नवधाभक्तिसहित आहारदान देते हैं। अहमदाबाद के श्री रोमेशचंद्र बाबूभाई गोपालदास के घर भगवान का आहारदान हुआ था। इस अवसर पर उपरोक्त सज्जनों ने हार्दिक हर्षोल्लास व्यक्त किया था।

दोपहर को श्री वीतरागी जिनबिम्बों पर अंकन्यास विधान हुआ। पूज्य स्वामीजी ने वीतराग जिनबिम्बों को मंत्राक्षरों द्वारा पूजित बनाया। इन्दौर निवासी विद्वान पंडित श्री नाथूलालजी प्रतिष्ठाचार्य सर्वविधि शास्त्रानुसार कराते थे और अत्यंत सरल भाषा में सारा विधान समझाते थे। प्रतिष्ठा-महोत्सव में जनता का उल्लास देखकर वे खूब प्रभावित हुए थे...

वे अपना प्रमोद व्यक्त करते हुए कहते थे कि—मैंने अबतक अनेक प्रतिष्ठाएँ करायी हैं परंतु ऐसा अपूर्व उत्साह नहीं देखा, और इतनी अधिक संख्या में इन्द्र किसी प्रतिष्ठा में नहीं बने। सचमुच पूज्य स्वामीजी का प्रभाव अद्‌भुत है।

अंकन्यास के पश्चात् भगवान के केवलज्ञान का दृश्य दिखाया गया। भगवान को केवलज्ञान होते ही इंद्रों ने केवलज्ञान की पूजा की और ज्ञानदीपकों से वेदी जगमगा उठी। समवसरण की रचना दर्शनीय थी। पश्चात् पूज्य स्वामीजी ने भगवान की दिव्यध्वनि के साररूप भाववाही आध्यात्मिकप्रवचन किया था। प्रवचन के पश्चात् अगले दिन होनेवाली विशाल रथयात्रा की बोलियाँ बोली गईं और एक घंटे में करीब एक लाख रुपया एकत्रित हो गया... इसी पर से लोगों के उत्साह का तथा उत्सव के वातावरण का ख्याल आ सकता है। रात्रि को किशनगढ़ की नाटक-मंडली ने सीताजी का वनवास एवं अग्निपरीक्षा का भव्य नाटक चार घंटे तक प्रदर्शित किया था... नाटक अत्यंत भावपूर्ण एवं कलामय था। लगभग १५ हजार लोगों ने मुग्ध होकर नाटक देखा था।

फाल्गुन शुक्ला पंचमी के प्रात:काल भगवान का निर्वाणकल्याणक हुआ। इधर जिनालय में संगमरमर का विशाल भव्य कमल हजार-हजार पंखुरियाँ फैलाये आतुरता से भगवान की प्रतीक्षा कर रहा था कि कब भगवान पधारकर मुझे पावन करते हैं! इतने में भगवान आ पहुँचे और उस कमलासन पर विराजमान हो गये... कमल मानों आनंद से खिल उठा।—मात्र कमल ही नहीं हजारों भक्तों के हृदयकमल आनंद से खिल उठे। ठीक ११.४९ मिनिट पर जिनमंदिर में जिनेन्द्र भगवंतों की स्थापना हुई... पूज्य स्वामीजी अत्यंत भक्तिभाव सहित भगवंतों की स्थापना कर रहे थे, दूसरी मंजिल में भव्य वेदी पर मूलनायक श्री पार्श्वनाथ भगवान की स्थापना भाईश्री पूनमचंद मलूकचंद छोटालाल द्वारा की गई थी। पार्श्वनाथ भगवान के आसपास श्री महावीर भगवान और श्री सीमंधर भगवान विराजमान हैं। कमलासन पर श्री आदिनाथ भगवान की स्थापना भाईश्री हरिलाल शिवलाल मनजीभाई लखतरवालों के परिवार ने की थी। इसप्रकार आनंदपूर्वक जिनेन्द्र भगवंतों की स्थापना से जिनालय शोभायमान हो उठा। अहमदाबाद के मुमुक्षुओं की दीर्घकालीन अभिलाषा पूरी हुई। सबके आनंद का आज पार नहीं था। अहमदाबाद का जिनमंदिर अत्यंत भव्य है... जिसे देखकर फिरोजाबाद (उ.प्र.) के जिनमंदिर का स्मरण हो आता है।

लगभग सवा लाख जैनियों से भरे हुए अहमदाबाद नगर का तथा जैन समाज का गौरव बढ़ानेवाली एक विशेष बात का उल्लेख आवश्यक है कि—यह प्रतिष्ठा-महोत्सव दिगम्बर जैन समाज का होने पर भी अहमदाबाद श्वेताम्बर जैन समाज ने अत्यंत मध्यस्थता रखकर तथा बन सके उतना सहयोग देकर समस्त जैन समाज का गौरव बढ़ाया है; कहीं भी कोई विसंवाद पैदा नहीं होने दिया। अहमदाबाद जैनसमाज के लिये यह शोभा की बात है। और सारे देश में ऐसा मित्रता एवं सहयोग का वातावरण फैले, यह भगवान महावीर के आनेवाले ढाई हजारवें निर्वाणोत्सव पर अत्यन्त आवश्यक है।

प्रतिष्ठा-महोत्सव की पूर्णाहुति के रूप में दोपहर को शांतिविधान एवं हवन हुआ था। और सायंकाल भगवान की विशाल रथयात्रा निकली थी।

जिनेन्द्र भगवान के पंच कल्याणक जगत का कल्याण करें...!

जय पार्श्वनाथ... जय आदिनाथ... जय नेमिनाथ!

हे जीव! इस क्लेशरूप संसार से विरम विरम! कुछ विचार कर! प्रमाद को छोड़कर जागृत हो! जागृत हो! नहीं तो रत्नचिंतामणि समान यह मनुष्यभव निष्फल चला जायेगा।

—श्रीमद् राजचंद्र

परम शांतिदायिनी

अध्यात्म-भावना

[आत्मधर्म की सरल लेखमाला]

लेखांक ४८] [अंक २८६ से आगे

भगवान श्री पूज्यपादस्वामीरचित 'समाधिशतक' पर पूज्य स्वामीजी के अध्यात्मभावना भरपूर वैराग्यप्रेरक प्रवचनों का सार।

अंतरात्मा को शरीर से पृथक् आत्मा की कैसी भावना करनी, वह अब कहते हैं—

तथैव भावयेद्देहाद्व्यावृत्यात्मानमात्मनि।
यथा न पुनरात्मानं देहे स्वप्नेऽपि योजयेत्॥८२॥

आत्मा में अंतर्मुख होकर शरीर से पृथक् आत्मा का ऐसा अनुभव करना कि जिससे फिर कभी शरीर के साथ स्वप्न में भी आत्मा का संबंध नहीं हो। धर्मी अपने आत्मा को शरीर से पृथक् ऐसा अनुभव करता है कि उसे स्वप्न भी ऐसे ही आते हैं; स्वप्न में भी शरीर के साथ एकता नहीं भासती। मैं शरीर से पृथक् चैतन्यबिंब होकर अनंत सिद्ध भगवंतों के मध्य में बैठा हूँ—ऐसे स्वप्न धर्मी को आते हैं। वाणी से या विकल्प से भावना करने की यह बात नहीं है, यह तो अंतर में आत्मा में एकाग्र होकर भावना करने की बात है। शरीर से पृथक् कहने पर रागादि से भी आत्मा पृथक है, उसकी भावना करनी चाहिये।

श्री समयसार में आचार्यदेव ने एकत्व-विभक्त आत्मा का जैसा वर्णन किया है, उसी की भावना करने की यह बात है।—किसप्रकार? कि स्वयं ऐसे आत्मा का स्वानुभव करके उसकी भावना करनी। अज्ञानी जीव, शरीर को धर्म का साधन मानते हैं; इसलिये वे तो शरीर से पृथक् आत्मा का कहाँ से अनुभव करें? ज्ञानी तो मानते हैं कि मेरा आत्मा, शरीर से अत्यंत पृथक् है। 'यह शरीर मैं हूँ'—ऐसी एकत्वबुद्धि स्वप्न में भी उसे नहीं है; इसलिये स्वप्न में भी आत्मा को शरीर के साथ एकमेक नहीं करते; आत्मा में ही श्रद्धा-ज्ञान को लगाकर उसकी भावना करते हैं। भेदज्ञान से निरंतर ऐसी भावना ही मोक्ष का कारण है॥८२॥

८२ वीं गाथा में ऐसा कहा कि आत्मभावना ही मोक्ष का कारण है, व्रत के शुभराग भी मोक्ष के कारण नहीं है; इसलिये मोक्षार्थी को अव्रत की भाँति व्रत का भी विकल्प त्याज्य है। परम उदासीनतारूप निर्विकल्प अवस्था में जैसे स्व-पर संबंधी विकल्प त्याज्य हैं; उसीप्रकार व्रत संबंधी भी विकल्प त्याज्य हैं-ऐसा अब कहते हैं।

अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः।
अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत्॥८३॥

अव्रत से पाप है, और व्रत से पुण्य है, उन दोनों के व्यय से मोक्ष होता है; इसलिये अव्रत की भाँति व्रत को भी मोक्षार्थी जीव छोड़ता है।

देखो, इसमें पूज्यपादस्वामी स्पष्ट करते हैं कि व्रत के शुभराग वे पुण्यबंध के कारण हैं, वे मोक्ष के कारण नहीं हैं; इसलिये मोक्षार्थी को वे भी छोड़ने योग्य हैं। उस-उस भूमिका में अव्रत छोड़कर व्रत के शुभराग धर्मी को आयें, वह और बात है; परंतु यदि उन्हें वे हेय नहीं मानते और उनसे लाभ होने का मानते हैं तो उनकी श्रद्धा ही विपरीत हो जाती है, इसलिये मिथ्यात्व होता है; मिथ्यादृष्टि के तो यथार्थ व्रत भी नहीं होते हैं। यहाँ तो भेदज्ञान के पश्चात् धर्मी को व्रतादि के भाव आते हैं, उनकी बात है; वे धर्मी मानते हैं कि जिसप्रकार हमने अव्रत छोड़े, उसीप्रकार इन व्रत के विकल्पों को भी जब हम छोड़ेंगे, तब हमारी मुक्ति होगी। इन व्रतों के विकल्प हमारी मुक्ति के कारण नहीं हैं।

देखो, जिसप्रकार भावपाहुड़ की ८३ वीं गाथा में भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने स्पष्ट कहा है कि—व्रतादि में पुण्य है और धर्म तो भिन्न वस्तु है। उसीप्रकार यहाँ भी ८३ वीं गाथा में पूज्यपादस्वामी स्पष्ट कहते हैं कि मोक्षार्थी को अव्रत की भाँति व्रत भी छोड़नेयोग्य है, क्योंकि व्रत के विकल्प, पुण्यबंध के कारण हैं; वे कहीं मोक्ष के कारण नहीं। अहो! सर्व संतों ने एक ही बात कही है। जैसा वस्तुस्वरूप है, वैसा ही समस्त संतों ने प्रसिद्ध किया है। संतों ने इतनी स्पष्ट बात समझाई तो भी अज्ञानी जीव, राग की रुचि से इतने अन्धे हो गये कि उनको सत्यस्वरूप दिखायी नहीं देता। क्या हो? कहीं कोई इनको जबरन समझा दे ऐसा है?

श्रीमद् राजचन्द्रजी भी आत्मसिद्धि में कहते हैं कि—

वीता काल अनंत वे, कर्म शुभाशुभ भाव,
उन शुभाशुभ को छेदते, उपजे मोक्षस्वभाव।

देखो, शुभ करते-करते मोक्ष हो—ऐसा नहीं कहा; परंतु शुभ-अशुभ दोनों का नाश करने से मोक्ष होता है—ऐसा स्पष्ट कहा है। धर्मात्मा, चैतन्यस्वभाव में एकाग्र होकर जब आनंद में लीन होता है, तब व्रतादि के शुभविकल्प भी छूट जाते हैं और मुक्ति होती है। इसलिये अंतरात्मा, व्रतादि के विकल्प को भी छोड़कर वीतरागीस्वरूप में स्थिर होने की भावना करता है।

अज्ञानी जीव कहते हैं कि 'व्रत, मोक्ष का कारण नहीं है तो क्या व्रत छोड़कर अव्रत करना?' अरे मूर्ख! यह बात कहाँ से लाया? व्रत को भी जो मोक्ष का कारण नहीं मानते, वे अव्रत—पाप को तो मोक्ष का कारण कैसे मानेंगे? व्रत छोड़कर अव्रत करने का माने, वह तो महास्वच्छंदी दुर्बुद्धि है और व्रत के शुभविकल्पों को जो मोक्ष का कारण माने, वह भी अज्ञानी दुर्बुद्धि है, मोक्ष के उपाय को वे नहीं जानते हैं। अव्रत या व्रत दोनों प्रकार के राग से रहित होकर और वीतरागभाव से स्वरूप में स्थिर होना, वही मोक्ष का कारण है—ऐसा धर्मी जानते हैं, इसलिये अव्रत तथा व्रत दोनों के विकल्पों को वे छोड़ने जैसा मानते हैं। पहिले अव्रत छोड़कर व्रत के विकल्प आयें, तो उनको भी छोड़ने जैसा मानते हैं। यदि उन्हें छोड़ने जैसा नहीं माने और मोक्ष का कारण माने तो उन विकल्पों को छोड़कर स्वरूप में क्यों स्थिर हो? उन विकल्पों से पृथक् आत्मा क्यों माने? इसलिये वे तो मिथ्यादृष्टि ही रहते हैं। धर्मी तो पहिले से ही समस्त विकल्पों से अपनी आत्मा को पृथक् जानते हैं और अव्रत तथा व्रत दोनों को छोड़ने योग्य मानते हैं। अव्रत और व्रत इन दोनों को धर्मी किस प्रकार छोड़ता है, वह बात ८४वीं गाथा में समझावेंगे।

❀ ❀ ❀

धर्मात्मा समस्त राग से अपने चिदानंदतत्त्व को भिन्न जानता है, राग के अंश को भी अपने अंतरंगस्वरूप से नहीं मानता। इसप्रकार राग से भिन्न चैतन्यतत्त्व को जानकर उसमें आंशिक एकाग्रता बढ़ने पर अव्रतों का त्याग हो जाता है, और पश्चात् विशेष लीन होने से स्व में सावधानी बढ़ने पर अव्रतों के समान व्रतों का शुभराग भी छूट जाता है। जिसप्रकार अव्रत के अशुभभाव बंध का कारण हैं, उसीप्रकार व्रत के शुभभाव भी बंध का कारण है; क्योंकि वह भी आत्मा की मुक्ति के बाधक हैं, इसलिये मोक्षार्थी को वह हेय है। जिसप्रकार लोहे की बेड़ी, पुरुष को बंधन करती है; उसीप्रकार सुवर्ण की बेड़ी भी बंधनकर्ता ही है, छूटने के इच्छुक को

तो वह दोनों बेड़ी के बंधन छोड़ने योग्य हैं; उसीप्रकार पाप और पुण्य दोनों जीव को बंधनकर्ता ही हैं—ऐसा जानकर मोक्षार्थी जीव को वह दोनों छोड़नेयोग्य हैं। पुण्य, वह आत्मा की मुक्ति में बाधकरूप है-विघ्नरूप है, फिर भी जो उसे मोक्ष का कारण माने, वह मिथ्यादृष्टि है। जो बंध के कारण को मोक्ष का कारण मानते हैं, उन्होंने वास्तव में बंध-मोक्ष के स्वरूप को जाना ही नहीं।

अज्ञानी कहते हैं कि व्रतादि व्यवहार करते-करते मुक्ति होगी। यहाँ आचार्य कहते हैं कि व्रतादि का व्यवहार हेयबुद्धि होने पर भी ज्ञानी को आता है परंतु वह मुक्ति में विघ्न करनेवाला है। कितना फर्क! मूल मान्यता में ही फर्क है। साधक को निचली भूमिका में वह व्रतादिक का राग नहीं छूटता, किंतु वह राग को बाधकरूप जानता है; वास्तव में साधकरूप नहीं मानता। अज्ञानी तो उस राग को वास्तव में साधकरूप मानता है; इसलिये उसकी तो श्रद्धा ही झूठी है।

अव्रत की भाँति व्रत का शुभभाव भी त्याज्य है—यह बात सुनते ही बहुत लोग विरोध करते हैं, हाय हाय करते हैं कि 'अरे! व्रत छोड़नेयोग्य?'—किन्तु भैया, धीरज रखकर समझना चाहिये। व्रत का शुभराग भी राग है; रागभाव बन्ध का कारण है कि मोक्ष का कारण है?

राग तो बंध का ही कारण है और मोक्ष में बाधक है, बंध का कारण है। जो वस्तु बंध का कारण हो, वह छोड़नेयोग्य होती है कि आदरणीय होती है? मोक्षार्थी जीव को रागादिक को बंध का ही कारण जानकर शुद्धभाव के द्वारा छोड़नेयोग्य हैं। समाधि तो वीतरागभाव के द्वारा होती है, कहीं भी राग द्वारा समाधि नहीं होती। अतः मोक्षार्थी जीवों को व्रत-अव्रत दोनों हेय हैं।

अब, उन्हें छोड़ने का क्रम क्या है? वह कहते हैं—

अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः।
त्यजेत्तान्यपि संप्राप्य परमं पदमात्मनः॥८४॥

व्रत-अव्रत दोनों विकल्पों से भिन्न शुद्ध चैतन्यतत्त्व को पहचानकर सम्यक्श्रद्धा-ज्ञान सहित उसी में स्थिरता-एकाग्रता के उद्यम द्वारा प्रथम तो अव्रतों को छोड़कर, धर्मी जीव व्रतों का पालन करते हैं अर्थात् स्वरूप में सावधानी बढ़ाते हैं; वहाँ प्रथम अव्रत की भूमिका के

रागभाव नष्ट होते हैं। जहाँ तक चैतन्य में विशेष स्थिरता नहीं है, वहाँ ऐसे व्रतों का शुभराग आता है; और पश्चात् शुद्धोपयोग द्वारा स्वरूप में लीन होकर उन व्रतों को भी छोड़कर उग्र शुद्धोपयोग के द्वारा वे अंतरात्मा, जीव मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

प्रथम तो तत्त्वज्ञानी होता है और अव्रत छोड़कर व्रत का भाव आता है, वहाँ धर्मी जीव व्रत का पालन करते हैं, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है, वास्तव में जो व्रत का राग है, उस राग के पालन की धर्मी को भावना नहीं है। धर्मी को तो शुद्धोपयोग की ही भावना है। व्रत के विकल्प को छोड़कर वह शुद्धोपयोग में लीन होना चाहते हैं। व्रतादिक के विकल्प में रुकते हैं, वहाँ तक मुक्ति नहीं होती; और जो कोई व्रत के विकल्पों से लाभ मानता है, वहाँ तक तो उसे मिथ्यात्व में से मुक्ति नहीं मिलती।

व्रत का शुभराग भी मोक्ष का कारण नहीं है किंतु मोक्ष को रोकनेवाला है; इसलिये त्याज्य है। यह बात सुनते ही मूढ़जन कहते हैं कि 'अरे, व्रत मोक्ष का कारण नहीं! तो क्या व्रत छोड़कर अव्रत करें?' ज्ञानी कहते हैं कि—अरे भोले! यह बात तू कहाँ से लाया? अव्रत को छोड़ने का तो प्रथम ही कहा था। व्रतपालन का राग आता है, वह वीतरागता नहीं है; व्रत को भी जो मोक्ष का कारण नहीं मानते, वह अव्रत के पाप को तो मोक्ष का कारण कैसे मानेंगे? निजशुद्धात्मा के आलंबन के बल द्वारा शुभाशुभ दोनों से छूटकर आत्मा के मोक्ष की बात सुनते ही उसको अपूर्व उत्साह आना चाहिये, सत्य बात में प्रेम, आदर न होकर जिसको खेद होता है कि 'अरे! हमारे शुभ छूट जाता है!' तो समझना कि उसको मोक्षतत्त्व की रुचि नहीं है किन्तु राग की ही रुचि है, संसार की रुचि है।

यहाँ तो उत्कृष्ट बात ऐसी है कि सर्वप्रथम मिथ्यात्व का बड़ा पाप तो छूटे। जिसने आत्मा का सम्यक्भान तो किया है, उपरांत हिंसादिक के पापभावोंरूप अव्रत भी छोड़कर अहिंसादि व्रत पालता है, उसे भी आगे बढ़ने के लिये कहते हैं कि इन व्रत के विकल्पों को भी छोड़कर तू स्वरूप में स्थित हो, तो तुझे परमात्मदशा प्रगट होगी।

प्रथम ऐसे यथार्थ मार्ग का निर्णय करना चाहिये; मोक्षमार्ग तो वीतरागभाव में ही है; राग में किंचित् मोक्षमार्ग नहीं है, फिर वह अशुभ हो या शुभ; सुमार्ग के निर्णय में ही जिसको विपरीतता है, जो राग को मोक्षमार्ग मानता है, वह रागरहित वीतराग कथित वीतरागी मोक्षमार्ग को कहाँ से साध सकेगा? प्रथम श्रद्धा में ही भूल है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव तो स्पष्ट

कहते हैं कि 'राग, मोक्षमार्ग नहीं है'—फिर वह भले ही अरिहन्त या सिद्ध भगवान के प्रति राग क्यों न हो!

इससे न राग किंचित् कहीं भी मोक्षेच्छु करे,
वीतराग होकर इस विधि, वह भव्य भवसागर तिरे।

कोई ऐसा कहे कि—'अरे, ऐसा है तो फिर भगवान की भक्ति कोई क्यों करे', तो उसको कहते हैं कि अरे भैया! भगवान कथित ऐसी वीतरागी बात जो समझ लेगा, उसे ही वीतराग भगवान के प्रति सच्ची भक्ति जागेगी। किंतु जो राग को मोक्षमार्ग मानता है, उसको वीतराग के प्रति सच्ची भक्ति नहीं जागेगी ॥८४॥ ●

आत्मा को साधने की विधि

दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा आत्मा की आराधना से ही सिद्धि होती है, इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार से सिद्धि नहीं होती; इसलिये दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा आत्मा की उपासना करना—यह मोक्षार्थी जीव का प्रयोजन है। चैतन्य की प्राप्ति करना ही जिसका मंगल-अभिप्राय है, ऐसा मोक्षार्थी जीव मुक्ति के लिये प्रथम तो ज्ञानस्वरूप आत्मा की पहिचान करके उसकी श्रद्धा करता है। यह चैतन्यस्वरूप आत्मा ही मैं हूँ, और उसके सेवन से पूर्ण सुखरूप मोक्ष की प्राप्ति होगी। ऐसी नि:शंक श्रद्धापूर्वक उसमें लीनता हो सकती है। मोक्ष का सिंहनाद करता हुआ जो शिष्य आया है, वह मंगल-अभिप्राय वाला शिष्य सर्व प्रकार से प्रयत्न द्वारा आत्मा को जानता है, श्रद्धा करता है और पश्चात् उसी में ठहरने का उद्यम करता है। उसे मुक्त होने की ही बात रुचिकर लगती है। सुनने में, मनन में, शास्त्र के पठन में सर्वत्र वह मुक्त होने की ही बात ढूँढ़ता है। प्रथम बात यह है कि आत्मा को जानना; जहाँ वास्तविक ज्ञान किया, वहाँ 'ऐसा आत्मा हूँ'—ऐसी नि:शंक श्रद्धा भी हुई। ऐसी श्रद्धा-ज्ञान करनेवाले को राग का अभिप्राय नहीं, संसार का अभिप्राय नहीं, एकमात्र चैतन्य की प्राप्ति का ही मंगल-अभिप्राय है, बंधन से मुक्त होने का ही अभिप्राय है। जिसप्रकार धन की प्राप्ति का अभिलाषी राजा को पहिचान कर और श्रद्धा करके बहुत ही उद्यमपूर्वक उसका सेवन करके उसे प्रसन्न करता है, विनय से-ज्ञान से सर्वप्रकार से सेवा करके राजा को राजी करके प्रसन्न करता है; उसीप्रकार मोक्षार्थी जीव अंतर्मुख प्रयत्न द्वारा प्रथम तो आत्मा को जानता है, और श्रद्धा करता है; ज्ञान द्वारा जो आत्मा की अनुभूति हुई, वह अनुभूति ही मैं हूँ—इसप्रकार आत्मज्ञानपूर्वक प्रतीति करता है, और फिर उस आत्मस्वरूप में ही लीन होकर आत्मा को साधता है।—आत्मा को साधन की यह विधि है। ('सम्यग्दर्शन' से)

भावनगर में.... भावमंगल

ज्ञान है, वह मन को आनंदरूप करता हुआ प्रगट होता है

[श्री जिनमंदिर के शिलान्यास प्रसंग पर पूज्य स्वामीजी भावनगर पधारे थे उस प्रसंग के मंगल-प्रवचन से।]

[समयसार, कलश ३३]

'नमः समयसाराय' ऐसे मंगलपूर्वक पूज्य स्वामीजी ने कहा कि इस शरीर से पृथक् आत्मा स्वयं आनंदस्वरूप है। जीव और अजीव की पृथकता को जानता हुआ ज्ञान, वह आत्मा को आनंदरूप करता हुआ प्रगट होता है। भेदज्ञान होते ही जीव आह्लादित होता है।

भाई, अनादि से तेरा तत्त्व शरीर से भिन्न आनंदस्वरूप है। ऐसे आत्मा का ज्ञान वही सच्चा ज्ञान कहलाता है। ज्ञान की निधिवाला आत्मा है, उसने अपने स्वरूप का ज्ञान कभी नहीं किया है। श्रीमद् राजचंद्रजी भी कहते हैं कि—

जो स्वरूप समझे बिना, पायो दुःख अनंत
समझाया वह पद नमूँ श्री सद्गुरु भगवंत... रे
गुणवंता ज्ञानी... अमृत वर्षा है पंचम काल में।

भाई, यह मनुष्य-जीवन तो क्षण में पूर्ण होता हुआ दिखाई देता है। इस शरीर के रजकण तो रेत की भाँति उड़ेंगे। शरीर तो पुद्गल की रचना है; आत्मा तो ज्ञान आनंदस्वरूप है। ऐसे आत्मा को जानने पर आनंदरूप अमृत बरसता है, वह मंगल है। आत्मा के आनंद का स्वाद जिसमें नहीं आये, उसे भगवान धर्म नहीं कहते हैं। धर्म का मार्ग यह है कि ज्ञानमूर्ति आत्मा को स्पर्श करके पुण्य-पाप से पृथक् ज्ञानस्वरूप के अनुभव द्वारा आत्मा होता है।

सर्वज्ञ भगवान ने पूर्ण ज्ञान और आनंद प्रगट किया, वे कहते हैं कि ऐसा ज्ञान और आनंद आत्मा के स्वभाव में है, वही प्रगट हुआ है, बाह्य से नहीं आया है। स्वभाव में ज्ञान और आनंद भरा हुआ ही है। जिसप्रकार शक्कर मिठासरहित नहीं होती, अग्नि उष्णतारहित नहीं होती—इसप्रकार प्रत्येक वस्तु में अपना-अपना स्वभाव होता है; उसीप्रकार आत्मा भी अपने ज्ञान-आनंद स्वभाव से भरपूर है। ऐसे आत्मा का ज्ञान ऐसी प्रतीति उत्पन्न करता है कि शरीर और राग मुझसे पृथक् हैं; ऐसी प्रतीति आनंदसहित प्रगट होती है।

आत्मा का ऐसा अशरीरी चिदानंदस्वभाव, उसे भूलकर संसार में चार गति के शरीर धारण करना, यह तो शर्म है। आत्मा में आनंद है, उसके अतिरिक्त शरीर में और राग में आनंद ढूँढ़ता है, यह अविवेक है। राग को अथवा शरीर को तो किंचित् मालूम नहीं है कि स्वयं कौन हैं ? जीव के ज्ञान में ही यह जानने की शक्ति है; जब वह ऐसा जानता है कि मैं तो चैतन्य हूँ, मेरा स्वाँग तो ज्ञानरूप है, रागादि वह मेरा स्वाँग नहीं है, और शरीर वह भी मेरा स्वाँग नहीं, वह जड़ का स्वाँग है, इसप्रकार दोनों की पृथक्ता जानता हुआ ज्ञान स्वयं आनंदरससहित प्रगट होता है।—ऐसा आत्मज्ञान करना, वह अपूर्व 'भाव-मंगल' है।

मृत्युकाल में आनंद

मृत्युकाल में किसी की शरण नहीं.... परंतु यदि मृत्यु आने से पूर्व शरणभूत स्वभाव को खोज ले तो आनंदपूर्वक शरीर छूटे। उसे मृत्युकाल में दुःख नहीं परंतु आनंद होता है। शरीर से भिन्न आत्मा को माना, वहाँ अपनी मृत्यु ही कहाँ है ? फिर मरण का भय कैसा ?

भाई, अब भी आत्मा को कौन शरण है ? अपने स्वभाव के अतिरिक्त अन्य किसी की शरण नहीं है। अभी या मृत्यु के समय या पश्चात् अन्य भव में जीव को अपना निजानंदस्वरूप चैतन्य आत्मा ही शरणरूप है, अन्य कोई शरणरूप नहीं है—ऐसा अनुभव करे, उसे अशरणरूप शरीर को छोड़ते समय दुःख नहीं होता, परंतु आनंद का वेदन करते-करते शरीर छूट जाता है... और समाधिमरणपूर्वक आराधना को साथ लेकर जाता है।

सम्यग्दर्शन के लिये प्राप्त हुआ सुवर्ण अवसर

[मोह के क्षय का अमोघ उपाय]

अहा, जो उपाय उल्लास से सुनने पर भी मोहबंधन शिथिल होने लगें... और जिनका सूक्ष्म अंतर्मंथन करने पर क्षणभर में मोह क्षय हो, ऐसा अमोघ उपाय संतों ने दिखलाया है। जगत में बहुत ही विरल और बहुत ही दुर्लभ ऐसा जो सम्यक्त्वादि का मार्ग, वह इस काल में संतों के प्रताप से सुगम बन गया है... यह वास्तव में मुमुक्षु जीवों का कोई महान सद्भाग्य है। ऐसा सुवर्ण अवसर प्राप्त करके संतों की छाया में अन्य सब भूलकर हम अपने आत्महित के प्रयत्न में कटिबद्ध हो जायें।

स्वभाव की सन्मुखता द्वारा राग-द्वेष-मोह का क्षय करके जो सर्वज्ञ अरिहंत परमात्मा हुए, उनके द्वारा उपदिष्ट मोह के नाश का उपाय क्या है ? वह यहाँ आचार्यदेव बतलाते हैं। प्रारंभ में ऐसा बतलाया कि भगवान अरिहंतदेव का आत्मा द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों से शुद्ध है, उनके आत्मा के शुद्ध द्रव्य-गुण-पर्याय को पहिचान कर, अपने आत्मा को उनके साथ मिलाने पर, ज्ञान और परभाव का भेदज्ञान होकर ज्ञान का उपयोग अंतरस्वभाव में झुकता है, वहाँ एकाग्र होने पर गुण-पर्याय के भेद का आश्रय भी छूट जाता है, और गुणभेद का विकल्प छूटकर, पर्याय शुद्धात्मा में अंतर्लीन होने पर मोह का क्षय होता है।

इसप्रकार भगवान अरिहंत के ज्ञान द्वारा मोह के नाश का उपाय बतलाया; अब यही बात अन्य प्रकार से बतलाते हैं-उसमें भगवान के कहे हुए शास्त्र के ज्ञान द्वारा मोह के नाश की रीति बतलाते हैं। प्रथम तो जिसने प्रथम भूमिका में प्रवेश किया है, ऐसे जीव की बात है। सर्वज्ञभगवान कैसे होते हैं ? मेरा आत्मा कैसा है ? अपने आत्मा का स्वरूप समझकर मुझे अपना हित करना है—ऐसा जिनको लक्ष हो, वे जीव मोह के नाश के लिए शास्त्रों का स्वाध्याय किसप्रकार करते हैं ? वह बतलाते हैं। वे जीव सर्वज्ञोपज्ञ ऐसे द्रव्यश्रुत को प्राप्त करके, अर्थात् भगवान का कहा हुआ सच्चा आगम कैसा होता है, उसका निर्णय करके,

पश्चात् उसी में क्रीड़ा करते हैं... अर्थात् आगम में भगवान ने क्या कहा है—उसका निर्णय करने के लिये निरंतर अंतर्मंथन करते हैं। द्रव्यश्रुत के वाच्यरूप शुद्धआत्मा कैसा है, उसका चिंतन-मनन करना, इसी का नाम द्रव्यश्रुत में क्रीड़ा है।

द्रव्यश्रुत के रहस्य का सूक्ष्मदृष्टि से विचार करे, वहाँ मुमुक्षु को ऐसा होता है कि आहा! इसमें ऐसी गंभीरता है!! राजा पग धोता हो और जो आनंद आये, उससे श्रुत के सूक्ष्म रहस्य का स्पष्टीकरण करने में जो आनंद आता है—वह तो जगत से भिन्न जाति का है। श्रुत के रहस्य के चिंतन का रस बढ़ने पर जगत के विषयों का रस उड़ जाता है। अहो, श्रुतज्ञान के अर्थ के चिंतन द्वारा मोह की गाँठ क्षीण हो जाती है। श्रुत का रहस्य जहाँ विचार में आया कि अहो, यह तो चिदानंदस्वभाव में स्वसन्मुखता कराते हैं... वाह! भगवान की वाणी! वाह दिगम्बर संत! वह तो मानो ऊपर से सिद्ध भगवान उतरे! अहा, भावलिंगी दिगम्बर संत मुनि! यह तो अपने परमेश्वर हैं, यह तो भगवान हैं; भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्य, पूज्यपादस्वामी, धरसेनस्वामी, वीरसेनस्वामी, जिनसेनस्वामी, नेमिचंद्रसिद्धान्त चक्रवर्ती, समंतभद्रस्वामी, अमृतचंद्रस्वामी, पद्मप्रभुस्वामी, अकलंकस्वामी, विद्यानंदस्वामी, उमास्वामी, कार्तिकेयस्वामी इन सर्व संतों ने अलौकिक कार्य किया है। शुद्ध आत्मा के प्रचुर स्वसंवेदनपूर्वक उनकी वाणी निकली है।

अहा! सर्वज्ञ की और संतों की वाणी चैतन्यशक्ति के रहस्यों को खोलकर आत्मस्वभाव की सन्मुखता कराती है। ऐसी वाणी को जानकर उसी में क्रीड़ा करने पर उसका चिंतन-मनन करने पर ज्ञान के विशिष्ट संस्कार द्वारा आनंद की स्फुरणा होती है, आनंद के झरने झरते हैं, आनंद के फव्वारे छूटते हैं। देखो, इस श्रुतज्ञान की क्रीड़ा का लोकोत्तर आनंद! वर्तमान में श्रुत का भी जिनको निर्णय न हो, वे कहाँ क्रीड़ा करेंगे? यहाँ तो जिसने प्रथम भूमिका में गमन किया है अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र कैसे होते हैं, उसकी किंचित् पहिचान की है, वे जीव किसप्रकार आगे बढ़ते हैं और किसप्रकार मोह का नाश करके सम्यकत्व प्रगट करते हैं, उनकी यह बात है। द्रव्यश्रुत में भगवान ने ऐसी बात की है कि जिसके अभ्यास से आनंद के फव्वारे छूटें! भगवान आत्मा में आनंद का सरोवर भरा है, उसकी सन्मुखता के अभ्यास में एकाग्रता द्वारा आनंद के फव्वारे छूटते हैं। अनुभूति में आनंद के झरने चैतन्यसरोवर मे से बहते हैं।

आचार्यदेव ने कहा था कि हे भव्य श्रोता! तू हमारे निजवैभव-स्वानुभव की इस बात को अपने स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष से प्रमाण करना। एकत्वस्वभाव का अभ्यास करने पर अंतर में

स्वसन्मुख स्वसंवेदन जागा, तब उस जीव ने द्रव्यश्रुत के रहस्य को प्राप्त किया। जहाँ ऐसा रहस्य प्राप्त किया, वहाँ अंतर की अनुभूति में आनंद के झरने झरने लगे... शास्त्र के अभ्यास से, उसके संस्कार से विशिष्ट स्वसंवेदनशक्तिरूप संपदा प्रगट करके आनंदसहित प्रत्यक्षादि प्रमाण से यथार्थ वस्तुस्वरूप जानने पर मोह का क्षय होता है। अहो, मोह के नाश का अमोघ उपाय—कभी निष्फल न हो ऐसा अभीष्ट उपाय संतों ने प्रसिद्ध किया है।

विकल्परहित ज्ञान का वेदन कैसा है—उसका अंतर्लक्ष करना, उसका नाम भावश्रुत का लक्ष्य है। राग की अपेक्षा छोड़कर स्व का लक्ष्य करने पर भावश्रुत खिलता है, और उस भावश्रुत में आनंद के झरने हैं। प्रत्यक्षसहित परोक्ष प्रमाण हो तो वह भी आत्मा को यथार्थ जानता है। प्रत्यक्ष की अपेक्षारहित मात्र परोक्ष ज्ञान तो परालम्बी है, वह आत्मा का यथार्थ संवेदन नहीं कर सकता। आत्मा की ओर झुककर प्रत्यक्ष हुआ ज्ञान, और उसके साथ अविरुद्ध ऐसा परोक्षप्रमाण, उससे आत्मा को जानने पर अंतरंग से आनंद के झरने बहते हैं।—यह सम्यग्दर्शन प्राप्त करने का और मोह के नाश करने का अमोघ उपाय है।

अरिहंत भगवान के आत्मा को जानकर वैसा ही अपने आत्मा के स्वरूप को पहिचानने पर, ज्ञानपर्याय अंतर्लीन होकर सम्यग्दर्शन होता है और मोह का क्षय होता है... पश्चात् उसी में लीन होने पर पूर्ण शुद्धात्मा की प्राप्ति होती है और सर्व मोह का नाश होता है। समस्त तीर्थंकर भगवंतों और मुनिवरों ने इसी एक उपाय से मोह का नाश करके मुक्ति प्राप्त की है,... और अपनी वाणी द्वारा जगत को भी यह एक ही मार्ग बतलाया है। यह एक ही मार्ग है और अन्य मार्ग नहीं—ऐसा पहले कहा था; और यहाँ ८६वीं गाथा में कहा कि सम्यक्प्रकार से श्रुत के अभ्यास से उसमें क्रीड़ा करने पर, उसके संस्कार से विशिष्ट ज्ञानसंवेदन की शक्तिरूप संपदा प्रगट करने पर, आनंद के उद्भेद सहित भावश्रुतज्ञान द्वारा वस्तुस्वरूप जानने पर मोह का नाश होता है। इसप्रकार भावज्ञान के अवलंबन द्वारा दृढ़ परिणाम से द्रव्यश्रुत का सम्यक् अभ्यास, वह मोहक्षय का उपाय है—इससे ऐसा नहीं समझना कि पहले कहा था, वह उपाय और यहाँ कहा, यह उपाय भिन्न प्रकार का है; कहीं भिन्न-भिन्न दो उपाय नहीं हैं। एक ही प्रकार का उपाय है, वह भिन्न-भिन्न शैली से समझाया है। अरिहंतदेव का स्वरूप पहिचानने जाये तो उसमें आगम का अभ्यास आ जाता है, क्योंकि आगम बिना अरिहंत का स्वरूप कहाँ से जानेगा? और सम्यक्द्रव्यश्रुत का अभ्यास करने में भी सर्वज्ञ की पहिचान साथ में आ जाती है,

क्योंकि आगम के मूल प्रणेता तो सर्वज्ञ अरिहंतदेव हैं, उनकी पहिचान बिना आगम की पहिचान नहीं होती।

अब इसप्रकार अरिहंत की पहिचान द्वारा, या आगम के सम्यक् अभ्यास द्वारा जब स्वसन्मुखज्ञान से आत्मा के स्वरूप का निर्णय करे, तभी मोह का नाश होता है। इसलिए दोनों शैलियों में मोह के नाश का मूल उपाय तो यही है कि शुद्ध चेतन से व्याप्त ऐसे द्रव्य-गुण-पर्यायरूप शुद्ध आत्मा में स्वसन्मुख होना। यहाँ मात्र शास्त्र के अभ्यास की बात नहीं की, परंतु 'भावश्रुत के अवलंबन द्वारा दृढ़ किये हुए परिणाम से सम्यक् प्रकार से अभ्यास' करने को कहा है। भावश्रुत तब ही होता है कि जब द्रव्यश्रुत के वाच्यरूप शुद्ध आत्मा की ओर ज्ञान का झुकाव होता है।—इसप्रकार के दृढ़ अभ्यास से अवश्य सम्यग्दर्शन होता है।

ऐसे सम्यक्त्वसाधक संतों को नमस्कार हो!

(श्री प्रवचनसार, गाथा ८६ के प्रवचन से)

भाई, यह तो सर्वज्ञ का निर्ग्रंथ मार्ग है। यदि तू स्वानुभव द्वारा मिथ्यात्व की गाँठ नहीं तोड़ता तो निर्ग्रंथमार्ग में आया क्यों? यदि जन्म-मरण की गाँठ को न तोड़ा तो निर्ग्रंथ के मार्ग में जन्म लेकर तूने क्या किया? भाई, ऐसा अवसर प्राप्त हुआ तो ऐसा उद्यम कर कि जिससे जन्म-मरण की गाँठ टूट जाये और अल्पकाल में तेरी मुक्ति हो।

वीतरागभाव का प्रतिबिम्ब-जिनप्रतिमा

धर्मी को व्यवहार के स्थान में व्यवहार और निमित्त होता है

प्रश्न—यदि राग का अवलंबन नहीं है, तो फिर जिनप्रतिमा का अवलंबन किसलिये ?

उत्तर—जिसको आत्मा के वीतरागभाव का प्रेम हो, परंतु अभी राग हो, उसे शुभराग के समय वीतरागता के निमित्तों के प्रति लक्ष जाता है; जिनप्रतिमा वह वीतरागभाव का प्रतिबिम्ब है। ऐसी प्रतिमा का आश्रय शुभराग के समय होता है, शुद्धता में तो अपने स्वभाव का ही अवलंबन है, उसमें किंचित् पर का आश्रय नहीं है। जिनप्रतिमाजी के दर्शन-पूजन के शुभराग को मोक्षमार्ग मान ले तो वह भूल है; और धर्मी को ऐसा शुभराग नहीं होता, ऐसा माने तो वह भी भूल है। जिस भूमिका में जैसा हो, वैसा ही जानना चाहिए। किस भूमिका में कितनी शुद्धता, कितना राग और उस राग में कैसा निमित्त होता है, उसका विवेक धर्मी को होता है। मुनिदशा जितनी शुद्धता प्रगट हुई हो और शरीर पर वस्त्र ओढ़कर फिरने का राग हो—ऐसा हो नहीं सकता। वस्त्र के रागसहित मुनिदशा माने, उसे मुनिदशा का पता नहीं है। छट्ठे-सातवें गुणस्थान में मुनि को वस्त्र का राग नहीं होता, तथापि वहाँ वस्त्र होना मानते हैं और चौथे-पाँचवें गुणस्थान में जिनपूजा आदि का राग होता है, तब भी वहाँ उसके निमित्तरूप जिनप्रतिमा आदि का निषेध करते हैं—इसप्रकार अज्ञानियों को धर्म की भूमिका का अनुभव नहीं है और किस भूमिका में कैसा निमित्त होता है, उसका भी उन्हें पता नहीं है। जिनप्रतिमा का स्वीकार किया, इससे कहीं उसके अवलंबन से मोक्षमार्ग हो जाता है, ऐसा नहीं है। रागरहित आत्मस्वभाव का अनुभव होने पर भी साधक भूमिका में राग शेष होता है, वहाँ जिसप्रकार परमात्मा के गुणों का स्तवन, वह शुभराग है, तब भी वे भाव आते हैं; उसीप्रकार भगवान की मूर्ति का अवलंबन, वह भी शुभराग है, तब भी वे भाव आते हैं। उसीप्रकार निजपरमात्मा के अवलंबन से जितनी शुद्धता प्रगट हुई है, उतना ही मोक्षमार्ग है। जिसप्रकार गुरु की सेवा, धर्म

का श्रवण आदि शुभभाव हैं; उसीप्रकार जिनदेव के दर्शन-पूजन, वह शुभभाव है। शुभ को शुभ की भाँति जानना चाहिए, और शुद्धता की धारा उससे भिन्न है-उसे जानना चाहिए।

यह तो सर्वज्ञ-वीतराग का अलौकिक मार्ग है; उसमें द्रव्य-पर्याय निश्चय-व्यवहार शुद्ध और शुभ, पुण्य और पाप, सबका स्वरूप जैसा हो, वैसा जानना चाहिए, और उसमें अपना हित किसप्रकार से है, उसका विवेक करना चाहिए। एक भूमिका में निर्मलता हो, वह अलग और राग हो, वह अलग; दोनों का मिश्रण नहीं है। व्यवहार के स्थान में व्यवहार होता है, परंतु निश्चयस्वभाव का आश्रय करनेवाले को अंतरंग में व्यवहार का आश्रय नहीं रहता।

जो गुणों और पर्यायों को पाये-प्राप्त करे, वह द्रव्य।

—अथवा—

जो गुणों और पर्यायों द्वारा पाया जाये-प्राप्त किया जाये, वह द्रव्य

अहा, वीतरागमार्ग में जिनेन्द्रदेव ने अलौकिक वस्तुस्थिति प्रसिद्ध की है। द्रव्य-गुण-पर्याय का यथार्थस्वरूप पहिचानने पर समस्त जगत की व्यवस्था जानने में आ जाती है। द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप वस्तु स्वतंत्र है; गुण-पर्याय का संबंध अपने द्रव्य के साथ है, अन्य के साथ नहीं है। ऐसा स्वरूप पहिचाने तो अपने गुण-पर्याय अपने द्रव्य में ढूँढ़े, इसलिये स्वसन्मुख हो; और पर में अपने गुण-पर्याय न ढूँढ़े; इसलिये पर के साथ की एकताबुद्धि छूट जाये।—इसप्रकार अपूर्व भेदज्ञान होता है।

प्रत्येक द्रव्य अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त करता है, परंतु अन्य के गुण-पर्यायों को कोई द्रव्य प्राप्त नहीं करता। आत्मद्रव्य अपने ज्ञानादि गुणों को तथा केवलज्ञानादि पर्यायों को प्राप्त

करता है, परंतु आत्मद्रव्य शरीरादि के गुण-पर्यायों को प्राप्त नहीं करता, उनसे तो सदा पृथक् ही है। आत्मा स्वयं कर्ता होकर अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त करता है, परंतु अन्य के गुण-पर्यायों का कर्ता नहीं हो सकता, उनको अपने में प्राप्त नहीं कर सकता।

और आत्मा के गुण-पर्यायों को आत्मा स्वयं प्राप्त करता है, कोई अन्य उन्हें प्राप्त नहीं करता, अथवा किसी अन्य द्वारा वे प्राप्त नहीं होते। परद्रव्य (निमित्तादि) हों तो आत्मा अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त कर सके, ऐसी पराधीनता नहीं है; स्वयं आत्मद्रव्य ही ऐसा है कि स्वयं ही अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त करता है। अपने गुण-पर्यायों के पास आत्मद्रव्य स्वयं जाता है; अर्थात् उनमें तन्मय-एकरूप होकर परिणमन करता है, परंतु आत्मद्रव्य अपने गुण-पर्यायों से बाहर अन्य में (शरीरादि में) नहीं जाता।

अन्य प्रकार से द्रव्य की व्याख्या ऐसी है कि—जो गुण और पर्यायें हैं, वे अपने द्रव्य को ही प्राप्त करती हैं, परंतु किसी अन्य को (निमित्तादि को) वे प्राप्त नहीं करती। पर्याय एक समय में एक होती है और गुण एक साथ अनंत होते हैं—ये सब गुण-पर्यायें द्रव्य को प्राप्त करते हैं। इसलिए एक वस्तु की पर्यायें किसी अन्य द्वारा प्राप्त हों, ऐसा नहीं है। अपनी पर्याय (अशुद्ध या शुद्ध) उसके द्वारा अपना द्रव्य प्राप्त होता है, परंतु उस पर्याय द्वारा (ज्ञान द्वारा या राग द्वारा) किसी अन्य को आत्मा प्राप्त कर सके, ऐसा नहीं है।

आत्मा के ज्ञानादि गुण और श्रुतज्ञानादि पर्यायें किसको प्राप्त करते हैं? कि अपने आत्मद्रव्य को ही वे प्राप्त करते हैं। वह पर्याय कहीं अन्य पर्याय को प्राप्त नहीं करती, परंतु द्रव्य को ही प्राप्त करती है—इसमें तन्मय होकर परिणमन करती है। इसलिये पर्याय के आधार से अन्य पर्याय नहीं होती, क्योंकि पर्याय वह अन्य पर्याय को प्राप्त नहीं होती परंतु उस-उस काल द्रव्य को ही प्राप्त होती है। वर्तमान समय की पर्याय वर्तमान परिणमन करते हुए अन्य को ही प्राप्त करती है, अन्य समय की पर्याय उस समय के द्रव्य को प्राप्त करेगी। पर्यायें भले ही एक के बाद एक होती हैं, परंतु प्रत्येक पर्याय उस समय के द्रव्य को प्राप्त करती है। पर्याय जड़ हो या चेतन, अशुद्ध हो या शुद्ध—उसके द्वारा द्रव्य प्राप्त होता है, अपने-अपने द्रव्य में वह जाती हैं, अन्य के पास नहीं जाती। पर्याय की एकरूपता द्रव्य के साथ है, अन्य के साथ नहीं है। इसलिये अन्य द्वारा पर्याय नहीं होती।

आत्मा की केवलज्ञान पर्याय परिणमन करके आत्मद्रव्य को प्राप्त करती है, परंतु वह

केवलज्ञान पर्याय परिणमन करके दिव्यध्वनि को या समवसरण को प्राप्त नहीं करती।

देखो तो सही, इस वीतराग शासन की अलौकिक वस्तुस्थिति! जिनेन्द्रदेव के उपदेश में ऐसी वस्तुव्यवस्था है। ऐसी वस्तुव्यवस्था विचार में लेने पर समस्त प्रकार की विपरीतता मिट जाती है और सम्यग्ज्ञान की उज्ज्वलता होती है। अहो, यह तो लोकालोक के पदार्थों का प्रकाशक अलौकिक दीपक है। इस टीका का नाम तत्त्वप्रदीपिका है।—तत्त्वों का यथार्थ स्वरूप यह प्रकाशित करती है।

[गुणपर्ययवत् द्रव्यं]

यहाँ आचार्यदेव कहते हैं कि द्रव्य ही गुण-पर्यायों को प्राप्त करता है और गुण-पर्यायों द्वारा द्रव्य ही प्राप्त किया जाता है—इसलिये निमित्त के कारण पर्याय प्राप्त हो, ऐसा नहीं है।

पर्याय द्वारा पर्याय प्राप्त नहीं होती, परंतु पर्याय द्वारा द्रव्य प्राप्त होता है, इसलिये पूर्व पर्याय द्वारा वर्तमान पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। वर्तमान पर्याय को वर्तमान समय में द्रव्य ने ही प्राप्त किया है, और उस पर्याय द्वारा द्रव्य ही प्राप्त किया गया है। इसतरह उस काल में अपने-अपने में ही द्रव्य-पर्याय की संधि है, परंतु पर के साथ उसकी संधि नहीं है।—ऐसे निर्णय में स्व-पर का भेदज्ञान होकर स्वसन्मुखता द्वारा सम्यग्दर्शनादि अपूर्व दशा प्रगट होती है। अहो! वीतरागमार्ग ने अलौकिक वस्तुस्थिति प्रकाशित की है।

गणधरदेव को चार ज्ञानरूप पर्याय है, उस पर्याय द्वारा उनका आत्मद्रव्य प्राप्त होता है, और उस पर्याय को उनके आत्मद्रव्य ने प्राप्त किया है, परंतु तीर्थंकरदेव द्वारा वह पर्याय प्राप्त नहीं की जाती। क्षायिकसम्यक्त्व पर्याय केवली या श्रुतकेवली भगवान द्वारा नहीं होती, परंतु वह आत्मद्रव्य स्वयं अपनी उस पर्याय को प्राप्त करता है, और उस पर्याय द्वारा उसका अपना आत्मद्रव्य प्राप्त होता है।

आत्मा की पर्याय द्वारा आत्मद्रव्य पहिचाना जाता है, और जड़ की पर्याय द्वारा जड़द्रव्य पहिचाना जाता है। आत्मा की पर्याय द्वारा परद्रव्य नहीं पहिचाना जाता और पर की पर्याय द्वारा आत्मद्रव्य की पहिचान नहीं होती।

प्रत्येक पर्याय अपने-अपने द्रव्य को ही प्रसिद्ध करती है कि 'मैं इस द्रव्य की पर्याय हूँ।' एक द्रव्य के गुण अन्य द्रव्य द्वारा नहीं होते, उसीप्रकार एक द्रव्य की पर्याय भी अन्य द्रव्य द्वारा नहीं होती।

अहो, द्रव्य-गुण-पर्यायस्वरूप वस्तु कितनी स्वतंत्र है! ऐसा स्वरूप पहिचाने तो अपने गुण-पर्याय की अपने द्रव्य में शोध करे, इसलिये स्वसन्मुख हो और पर में अपने गुण-पर्याय की शोध नहीं करे, इसलिये पर के साथ की एकताबुद्धि छूट जाये। इसप्रकार अपूर्व भेदज्ञान होता है।

द्रव्य-गुण-पर्याय का यथार्थस्वरूप पहिचानने पर समस्त जगत की वस्तुस्थिति पहिचानने में आ जाती है। भाई, अपनी केवलज्ञान पर्याय को अपने द्रव्य में शोध, अन्य में मत शोध। अपनी सम्यग्दर्शन पर्याय को अपने द्रव्य में शोध, अन्य में मत शोध, पूर्वपर्याय में मत शोध, क्योंकि तेरी पर्याय तेरे द्रव्य द्वारा प्राप्त होती है; पर से, निमित्त से, राग से या पूर्व पर्याय से वह प्राप्त नहीं होती। अपनी एक भी पर्याय या गुण ऐसा नहीं कि अन्य द्वारा वह प्राप्त हो, वह अपने स्वद्रव्य द्वारा हो प्राप्त होता है—इसलिये देख अपने द्रव्य में।

स्वद्रव्य का अवलोकन करने पर ही उसके द्वारा अपूर्व आनंददशा प्रगट होगी।

पीलापन और कुण्डल आदि से भिन्न सोना नहीं होता, उसीप्रकार गुण और पर्यायों से भिन्न, द्रव्य नहीं होता। द्रव्य स्वयं गुण-पर्यायस्वरूप है, गुण-पर्याय का आत्मा, वह द्रव्य; गुण-पर्यायात्मक द्रव्य—ऐसा उसका स्वरूप है। (गुणपर्ययवत् द्रव्यम्। - तत्त्वार्थसूत्र)

वस्तु का विस्तार तीन में है—द्रव्य-गुण-पर्याय। वस्तु के विस्तार में अपने द्रव्य-गुण-पर्याय के अतिरिक्त अन्य किसी का प्रवेश नहीं होता; और यह वस्तु फैलकर अन्य किसी में नहीं जाती। अपने गुण-पर्याय द्रव्य को प्राप्त होते हैं, और द्रव्य, गुण-पर्याय को प्राप्त होता है। बस, उसी में वस्तु का सर्वस्व आ जाता है।

तेरा विस्तार कितना? कि तेरे ज्ञानादि अनंतगुण और उसकी पर्यायें, उसी में तेरा द्रव्य है, इस द्रव्य द्वारा ही अपने गुण-पर्याय प्राप्त किये जाते हैं, अर्थात् द्रव्य अपने गुण-पर्याय से भिन्न नहीं। पर से भिन्न, निमित्त से भिन्न, परंतु अपनी पर्याय से भिन्न नहीं है। पर्याय की प्राप्ति पर्याय में से नहीं, पर्याय की प्राप्ति द्रव्य द्वारा ही है। बस, ऐसा निर्णय करने पर पर्यायबुद्धि नहीं रहती, इसलिये उस काल द्रव्य द्वारा निर्मल पर्याय प्राप्त होती है।

इसप्रकार अरिहंतदेव के मार्ग में द्रव्य-गुण-पर्याय का यथार्थस्वरूप पहिचानने पर अवश्य मोह का नाश होकर सम्यग्दर्शनादि होते हैं। जयवंत वर्ते.... जिनेश्वरों का ऐसा मार्ग। हे जीव! ऐसा जिनमार्ग पाकर तू परम उद्यम कर।

सोनगढ़ में

धार्मिक अध्ययन की योजना

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का ८०वाँ जन्मोत्सव बम्बई में रत्नचिन्तामणि-महोत्सव के रूप में आगामी वैशाख शुक्ला द्वितीया को हर्षोल्लाससहित मनाया जा रहा है। जिसके उपलक्ष में श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ ने धार्मिक अध्ययन की एक योजना बनायी है—जिसकी रूपरेखा निम्न प्रकार है:—

(१) जैनधर्म में रुचि रखनेवाले कोई भी त्यागी अथवा सुयोग्य विद्वान सोनगढ़ में रहकर धार्मिक अध्ययन करें। पूज्य आत्मज्ञ संत श्री कानजीस्वामी के प्रवचनों का प्रतिदिन श्रवण करते हुए यहाँ चलनेवाले शिक्षणशिविर में रुचिपूर्वक अभ्यास करें और जो विषय अभ्यासक्रम में रखे जायें, उनमें निपुणता प्राप्त करें।

(२) इसप्रकार जो विद्वान या त्यागी नियमितरूप से दो महीने तक उपस्थित रह सकते हों, उनके लिये यहाँ निवासस्थान एवं भोजनादि की समुचित व्यवस्था कर दी जायेगी। तदुपरांत जिन्हें आने-जाने के लिये मार्ग-व्यय की आवश्यकता मालूम होगी, उन्हें वह भी दिया जायेगा।

(३) शास्त्राभ्यास में निपुणता प्राप्त करने के पश्चात् उन्हें धर्मप्रचारार्थ बाहर भेजा जायेगा। वहाँ वे, पूज्य स्वामीजी जिन जैनसिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं, तदनुसार उपदेश जैन जनता को दें, शिक्षणशिविर खोलें और उनमें विद्यार्थियों एवं प्रौढ़ों को धार्मिक अभ्यास करायें।

(४) जो गृहस्थ विद्वान प्रचार कार्य हेतु जायेंगे, उन्हें योग्यतानुसार वेतन भी दिया जायेगा।

(५) अनुकूल समय पर ऐसे शिक्षणशिविर यहाँ सोनगढ़ में खोले जायेंगे और वे कम से कम दो महीने तक चलेंगे। इसप्रकार वर्ष में तीन बार शिविरों का आयोजन किया जायेगा। फिलहाल दो वर्ष के लिये यह योजना बनायी जा रही है। ऐसा पहला शिक्षणशिविर संभवत: मई महीने में प्रारंभ हो जायेगा।

(६) जो सज्जन उपरोक्त योजना का लाभ उठाना चाहें वे अपनी शिक्षा (धार्मिक तथा लौकिक), उम्र, वर्तमान कार्य आदि का संपूर्ण विवरण देतु हुए निम्नोक्त पते पर पत्र-व्यवहार करें।—जिन्हें पसंद किया जायेगा, उन्हें उचित समय पर सूचना दी जायेगी और तब उन्हें यहाँ आना होगा।

नवनीतलाल सी. जवेरी
प्रमुख
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

सोनगढ़
तारीख ४-१-६८

—: विज्ञप्ति :—

श्री समयसारजी शास्त्र (हिन्दी) की तृतीय आवृत्ति प्रकाशित करने की माँग अनेक जिज्ञासुओं की ओर से आ रही है। मुमुक्षुओं से निवेदन है कि—जिन्हें जितनी प्रतियों की आवश्यकता हो उसकी सूचना अपने नाम-पते सहित भिजवा देवें। पर्याप्त संख्या में आर्डर आ जाने पर छपाई की व्यवस्था की जायेगी।

पता:—
दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

ज्ञानी या अज्ञानी कोई जीव अपने से भिन्न जगत के किसी भी पदार्थ का कुछ नहीं कर सकता। अंतर मात्र इतना है कि अज्ञानी 'मैं करता हूँ—मैं भोगता हूँ' ऐसी स्व-पर की एकताबुद्धिरूप मिथ्या मान्यता से दु:खी है और ज्ञानी स्व-पर की भिन्नतारूप यथार्थ वस्तुस्वरूप को जानने से सुखी हैं।

अज्ञानी 'अर्थ का अनर्थ' करता है

द्रव्य-गुण-पर्याय वह 'अर्थ' है। द्रव्य स्वयं ही गुण-पर्यायों को प्राप्त करता है, और गुण-पर्याय स्वयं द्रव्य को प्राप्त होते हैं। परंतु वे कहीं अन्य अर्थों को प्राप्त नहीं करते अथवा अन्य अर्थ द्वारा प्राप्त नहीं होते।—ऐसी स्वतंत्र अर्थव्यवस्था (वस्तुस्वरूप) है।

अब ऐसे अर्थ को जो नहीं जानते, और अपने द्रव्य-गुण-पर्याय का कुछ अंश अन्य द्वारा प्राप्त होने का मानते हैं, अथवा अन्य के किसी भी द्रव्य-गुण-पर्याय को स्वयं करे, ऐसा जो मानते हैं—वे 'अर्थ' का अनर्थ करते हैं। आँख के अंध से भी इस 'अर्थ के अनर्थ' करनेवाले को मिथ्यात्व का महान दोष है। द्रव्य-गुण-पर्यायरूप वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानने पर मोह का क्षय होता है।

वस्तु अपने गुण-पर्याय में रहती है, इसलिये उसी को वह करती है; पर के गुण-पर्यायों को वह नहीं करती। यदि पर को करे तो वह पर में चली जाये और पदार्थ-व्यवस्था ही न रहे, अर्थ का अनर्थ हो जाये। इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि—

अहो, जिनेन्द्रदेव के परम अद्‌भुत उपदेश में द्रव्य-गुण-पर्यायरूप वस्तुस्वरूप का यथार्थ बोध कराया है, उसे प्राप्त करके हे जीवो! तीक्ष्ण पुरुषार्थ द्वारा तुम मोह का नाश करो... और आत्मस्वरूप के अतीन्द्रिय सुख का अनुभव करो।

- प्रत्येक वस्तु अपने-अपने द्रव्य-गुण-पर्याय में विद्यमान है;
- मेरे द्रव्य-गुण-पर्याय मेरे चेतनरूप हैं, उन्हें पर के साथ संबंध नहीं है;
- पर के द्रव्य-गुण-पर्यायों को उन-उन पदार्थों के साथ संबंध है, मेरे साथ उनका कुछ भी संबंध नहीं है।

—इसप्रकार स्व-पर के विभाग द्वारा मोह का नाश होता है। क्योंकि जिनोपदेशानुसार स्व-पर की अत्यंत भिन्नता को जाननेवाला जीव, अपनी पर्याय की शुद्धि के लिये अन्य के सामने नहीं देखता (पर के साथ एकता नहीं मानता), परंतु अपने स्वद्रव्य के सन्मुख ही देखता है और स्व में ही एकत्व करके परिणमन करता है। और ऐसे स्वभावसन्मुख परिणमन में मोह का अभाव होकर निर्मोही वीतरागीदशा और परमसुख प्रगट होता है।

वात्सल्य-भावना

[श्री समन्तभद्रस्वामी रचित 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' की टीका से]

आत्मार्थिता की पुष्टि, वात्सल्य का विस्तार, देव-गुरु-धर्म की सेवा तथा धार्मिक संस्कारों का सिंचन,—यह अपने आत्मधर्म के उद्देश हैं। इसप्रकार के लेख समय-समय पर आत्मधर्म में प्रकाशित होते रहते हैं। धर्मप्रेमी को धार्मिक अवसरों पर वात्सल्यभाव अवश्य आता ही है। यह हर्ष का विषय है कि संतजनों के प्रताप से ज्ञानभावना के साथ-साथ वात्सल्य भावना का प्रचार हो रहा है। धर्मात्माओं के वात्सल्यपूर्ण दो शब्द भी संसार के सर्व दुःखों को भुला देते हैं। ऐसे वात्सल्यधर्म का वर्णन यहाँ दे रहे हैं।

प्रवचन अर्थात् देव-गुरु-धर्म, उनमें वात्सल्य अर्थात् प्रीतिभाव, उसे प्रवचनवात्सल्य कहते हैं।

जो सम्यक्त्वसहित चारित्र के तथा शील के धारक हैं, परम साम्यभावसहित बाईस परीषहों को सहते हैं, देह के प्रति निर्मम, समस्त विषयों की वांछा से रहित, आत्महित में उद्यमी, पर का उपकार करने में सावधान हैं—ऐसे साधुजनों के गुणों में प्रीतिरूप परिणाम, सो वात्सल्य है।

तथा व्रतों के धारक, पाप से भयभीत, न्यायमार्गी, धर्म में अनुरागी, मंदकषायी और संतोषी, ऐसे श्रावक तथा श्राविकाओं के गुणों में तथा उनकी संगति में अनुराग धारण करना, सो वात्सल्य है।

तथा स्त्री पर्याय में व्रतों की सीमा को प्राप्त, समस्त गृहादि परिग्रह को छोड़कर, कुटुम्ब का ममत्व तजकर, देह में निर्ममत्व धारण करके पंचेन्द्रिय-विषयों का त्याग करके, एक वस्त्रमात्र का परिग्रह रखनेवाले, भूमिशयन, क्षुधा, तृषा शीत-उष्ण आदि परिषहों के

सहनेवाले संयम सहित ध्यान, स्वाध्याय, सामायिकादि आवश्यकों सहित अर्जिका की दीक्षा ग्रहण कर संयम सहित रहते हैं, उनके गुणों में अनुराग, सो वात्सल्य है।

तथा जो मुनियों की भाँति वन में निवास करते हैं, बाईस परिषह सहते हैं, उत्तम क्षमादि दस धर्मों के धारक हैं, देह के प्रति निर्मम हैं, अपने निमित्त बनाये गये औषधि एवं अन्न-जल आदि का ग्रहण नहीं करते, एक वस्त्र को छोड़कर समस्त परिग्रह के त्यागी हैं, ऐसे उत्तम श्रावकों के गुणों में अनुराग, सो वात्सल्य है।

तथा देव-गुरु-धर्म के सत्यार्थ स्वरूप को जानकर जो दृढ़ श्रद्धानी एवं धर्म में रुचि के धारक हैं—ऐसे अव्रतसम्यग्दृष्टि के प्रति भी वात्सल्य धारण करना चाहिए।

इस संसार में जीव अपने स्त्री-पुत्र-कुटुंब आदि में तथा देह में, इन्द्रियविषयों के साधनों के अति अनुरागी होकर उनके लिये, कटते-मरते हैं, अन्य को मारते हैं—ऐसा कोई मोह का अद्‌भुत माहात्म्य है। वह पुरुष धन्य है, जो सम्यग्ज्ञान के द्वारा मोह को नष्ट करके आत्मा के गुणों में वात्सल्य करता है।

संसारी प्राणी तो धन की लालसा द्वारा अति आकुल होकर धर्म के वात्सल्य को छोड़ देता है, संसारी को धन बढ़ने के साथ-साथ अतितृष्णा बढ़ती है। समस्त धर्म का मार्ग भूल जाते हैं। धर्मात्माओं के प्रति वात्सल्यभाव का त्याग कर देते हैं। दिन-रात धन-सम्पदा की वृद्धि में ऐसा अनुराग बढ़ाते हैं कि लाखों होने पर करोड़ों की इच्छा करते हैं। इसप्रकार आरंभ-परिग्रह की वृद्धि करते हुए, पाप में प्रवृत्त होते हुए धर्म में वात्सल्य भाव को बिल्कुल त्याग देते हैं।

जहाँ दानादि में—परोपकार में धन लगाने का अवसर आये, वहाँ उसे दूर से ही टाल देते हैं। अत्यंत आरंभ-परिग्रह, एवं अतितृष्णा से समीप आया नरकवास भी उनको नहीं दिखता। उसमें भी पंचम काल के धनाढ्य तो (बहुधा) पूर्व मिथ्याधर्म, कुपात्रदान, कुदानों में ऐसा कर्म बाँधकर आये हैं कि नरक, तिर्यंगति की परिपाटी असंख्यकाल-अनंत कालपर्यंत न छूटे। उनका तन-मन-वचन-धन धर्मकार्य में नहीं लगता। दिन-रात तृष्णा और आरंभ से क्लेशित रहते हैं, उनमें धर्मात्मा और धर्म के प्रति कदापि वात्सल्यता नहीं होती। धनरहित धर्मात्मा को भी वे अपने से नीचा मानते हैं।

अतः हे आत्मन्! हित का बाँछक होकर, धन-संपदा को महामद को उत्पन्न करानेवाली जानकर, देह को अस्थिर दुःखदाई जानकर, तथा कुटुम्ब को महाबंधन मानकर

इनसे प्रीति छोड़कर अपने आत्मा का वात्सल्य करो! धर्मात्मा में, व्रतियों में, स्वाध्याय में, जिनपूजन में वात्सल्य करो। सम्यक्चारित्ररूप आभूषण से भूषित साधुजनों का जो स्तवन करता है—महिमा करता है, उनको वात्सल्य नामक गुण है; वह सुगति को प्राप्त करता है; कुगति का नाश करता है। वात्सल्य गुण के प्रभाव से ही समस्त द्वादशांगविद्या सिद्ध होती है। क्योंकि सिद्धांतसूत्र और सिद्धांत के उपदेशदाता उपाध्याय के प्रति सच्ची भक्ति के प्रभाव से श्रुतज्ञानावरणीय कर्म का रस सूख जाता है। सकल विद्या सिद्ध होती है। वात्सल्यगुण धारक को देव नमस्कार करता है, वात्सल्य द्वारा अनेक प्रकार की ऋद्धियाँ प्रगट होती हैं। धर्म वात्सल्य के द्वारा मंदबुद्धि जीवों को भी मति-श्रुतज्ञान का विकास होता है। वात्सल्य के प्रभाव से पाप का प्रवेश नहीं होता। तप भी वात्सल्य के द्वारा शोभा देता है। तप में उत्साह न हो तो निरर्थक है। इसप्रकार जिनेश्वरदेव का मार्ग वात्सल्य द्वारा ही शोभा पाता है। वात्सल्य के द्वारा शुभध्यान की वृद्धि होती है, और सम्यग्दर्शन निर्दोष होता है। वात्सल्य द्वारा ही दिया हुआ दान कृतार्थ होता है। पात्र में प्रीति तथा देने में प्रीति के बिना दान निंदा का कारण है। जिनवाणी के प्रति जिसको वात्सल्य न हो, विनय न हो, उसको सच्चा अर्थ नहीं सूझता, वह तो विपरीत को ग्रहण करेगा। इस मनुष्यजन्म की शोभा वात्सल्य से ही है। वात्सल्यरहित जीव बहुत मनोज्ञ गहने-वस्त्रादि धारण करे, तथापि पद-पद पर निंदा ही पाता है। इसलोक संबंधी यश का, धर्म का, और धन का उपार्जन वात्सल्य द्वारा ही होता है, वात्सल्य बिना इसलोक का सभी कार्य बिगड़ जाता है तथा परलोक में देवादि गति की प्राप्ति नहीं कर सकता।

अरहंतदेव, निर्ग्रंथगुरु, स्याद्वादरूप परमागम और दयारूप धर्म के प्रति जो वात्सल्य है वह संसारपरिभ्रमण का नाश करके निर्वाण की प्राप्ति कराता है। तथा जिनमंदिर की शोभा, जिनसिद्धांत का सेवन, साधर्मी की वैयावृत्य, धर्मानुराग, दान देने में प्रीति—यह सभी गुण भी वात्सल्य से ही होते हैं। षट्काय जीवों में जो वात्सल्य करता है, वही तीन लोक में अतिशयरूप ऐसी तीर्थंकरप्रकृति का उपार्जन करता है। अतः जो कल्याण के इच्छुक हैं, वे भगवान जिनेन्द्रदेव कथित सम्यक्त्वसहित वात्सल्य गुण की महिमा को जानकर इस सोलहवें वात्सल्य अंग का स्तवन, पूजन, अर्चन करते हैं। वे जीव दर्शन की विशुद्धि को पाकर तपाचरण करके अहमिन्द्रादि देवलोक को प्राप्त करके पश्चात् जगत-उद्धारक तीर्थंकर होकर निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

✻ राग के अवलंबनरहित वीतरागमार्ग ✻

- निश्चय स्वभाव-आश्रित मोक्षमार्ग है... उसमें राग का अवलंबन नहीं है।
- निजपरमात्मा की भावना, वह मोक्षमार्ग है... उसमें राग का अवलंबन नहीं है।
- औपशमिकादि भाव, वे मोक्षमार्ग हैं... उसमें राग का अवलंबन नहीं है।
- शुद्ध उपादानकारण, वह मोक्षमार्ग है... उसमें राग का अवलंबन नहीं है।
- भावश्रुतज्ञान, वह मोक्षमार्ग है... उसमें राग का अवलंबन नहीं है।
- शुद्धात्म-अभिमुख परिणाम, वह मोक्षमार्ग है... उसमें राग का अवलंबन नहीं है।
- शुद्धात्मा के ध्यानरूप मोक्षमार्ग है... उसमें राग का अवलंबन नहीं है।
- शुद्धोपयोग, वह मोक्षमार्ग है... उसमें राग का अवलंबन नहीं है।
- वीतरागभाव, वह मोक्षमार्ग है... उसमें राग का अवलंबन नहीं है।

—इसप्रकार मोक्षमार्ग के भाव में कहीं पर राग का अवलंबन नहीं, अपने परम स्वभाव का ही अवलंबन है। राग वह उदयभाव है, यदि उसके आधार से उपशमादि भाव होते तो वे दोनों पृथक् नहीं रहते। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनंदरस का झरना है, शांतरस का सरोवर है, उसमें एकाग्र होने पर जो दशा प्रगट हुई, वही मोक्षमार्ग है। ऐसी शुद्धवस्तु के अनुभव रहित त्रिकाल में भव से अंत नहीं आता।

अरे, ऐसा मार्ग सुनकर भी जीव पुकार करते हैं कि हमारा व्यवहार उड़ जाता है... पुण्य उड़ जाता है! परंतु तनिक शांत होकर सुन, भाई!—क्या राग हो तो वीतरागता हो? क्या व्यवहार से अवलंबन द्वारा निश्चय होता है? क्या दोष द्वारा निर्दोषता प्रगट होती है?—अरे, यह किसके घर की बात है। राग से वीतरागता कभी नहीं होती; राग के अभाव से वीतरागता होती है। निश्चयस्वभाव के अवलंबन से ही निश्चय-मोक्षमार्ग होता है। राग, वह दोष है, उसके द्वारा निर्दोषता नहीं होती परंतु निर्दोष स्वभाव के अनुभव से ही निर्दोषता होती है। ऐसा स्पष्ट मार्ग, उसमें कहीं पर गड़बड़ नहीं चल सकता।

अविचार और अज्ञान, वह सर्व क्लेश का मोह का, एवं कुगति का कारण है। सद्विचार और आत्मज्ञान, वह आत्मगति का कारण है। —श्रीमद् राजचंद्र

जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि

न रम्यं नारम्यं प्रकृतिगुणतो वस्तु किमपि।
प्रियत्वं वस्तूना भवति च खलु ग्राहकवशात्॥

कोई भी वस्तु प्रकृति से सुंदर या असुंदर नहीं है, सुंदरता-असुंदरता वस्तु के ग्राहक के ऊपर आधारित है। बाह्य विषय मनोज्ञ-अमनोज्ञ नहीं हैं, मोहवश माने तो मानो। छह द्रव्य सभी सदा अपने से हैं, पर के कारण या आधार से विद्यमान हों, ऐसा नहीं है। बस, सदा सर्वत्र सर्वज्ञवीतराग कथित यथार्थता, स्वतंत्रता, वीतरागता की दृष्टि से यथार्थता, स्वतंत्रता, वीतरागता का ग्रहण करना, वही स्वसन्मुख होने का—सुखी होने का उपाय और उपदेश है।

निर्ममत्व महासुखी

परस्पृहामहादुःखं निस्पृहत्वमहासुखं।
एतदुक्तं समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः॥

निस्पृहवृत्ति (जो सर्वज्ञवीतराग कथित हो), यह सबसे बड़ा सुख है। स्पृहां (आशा) वह बड़ा दुःख है, यह संक्षेप में सुख-दुःख का लक्षण है।

अविद्या को त्याग, सावधान हो

त्वमेवदुःखं नरकस्त्वमे, त्वमेवशर्मापि शिवंत्वमेव,
त्वमेवकर्माणि मनस्त्वमेव, जहीह्यविद्यामवधेहि चात्मन्।

हे आत्मन्! तू ही दुःख, तू ही नरक, तू ही सुख-मोक्ष है, कर्म और मन भी तू है। अविद्या को छोड़ और सावधान हो।

हे आत्मन्! तू ही अपने सुख-दुःख का कर्ता-भोक्ता स्वामी है, सुख-दुःख की कल्पना भी तू ही करता है, नरक भी तू ही है। दुःख का संचय करनेवाला और समझनेवाला तू ही है। सुख के लिये भी तू ही आधार और विवेक करनेवाला है। तू ही अपनी समझ के अनुसार अमुक वृत्ति को सुख मानता है। यदि प्रबल पुरुषार्थ करे तो सभी दुःखों का अत्यंत अभाव

करके मोक्ष-मंदिर में चिरकाल आनंद को भोगनेवाला भी तू ही है, अत: वास्तव में मोक्ष तेरा है—तू ही मोक्षस्वरूप है।

धर्म धर्मी एक न्याय से एक अभेद हैं; जैनशास्त्र में बंधन और मुक्ति में आत्मा के ऊपर ही सर्वथा आधार रहता है; उसे कोई मदद नहीं करता, बाहर की मदद की अपेक्षा नहीं रहती, अपनी विपरीतदशारूप आवरण को दूर करने के लिये सम्यक्पुरुषार्थरूप असाधारण उद्योग करना चाहिये। इस आत्मा में निरंतर सदैव अनंत शक्ति है, चाहे तो वीर परमात्मा जितना ज्ञान और ऋद्धि प्रगट कर सकता है।

वैराग्य-समाचार

आत्मधर्म के तंत्री, (प्रधान-संपादक) सावरकुंडला निवासी श्री जगजीवन बाऊचंद दोशी का स्वर्गवास तारीख २६-२-६९ को आत्मजागृतिपूर्वक हो गया। आप कई वर्षों से अपने प्रदेश के एक नि:स्वार्थ सेवाभावी सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में प्रसिद्ध थे। सारे प्रदेश को आपके प्रति अति आदरभाव था। बचपन से आपको धार्मिक लगन तो थी ही, परंतु करीब ३० वर्षों से आप पूज्य श्री कानजीस्वामी के अनन्य भक्त बन गये थे, और उनके संपर्क में रहकर सर्वज्ञवीतराग कथित तत्त्वज्ञान का अच्छा अध्ययन किया था। श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के कार्यों में आपका अच्छा सहयोग रहता था। अभी कुछ ही दिनों पहले सरकार ने आपको जे.पी. की मानद् उपाधि से विभूषित किया था, परंतु आपको उसका जरा भी मोह नहीं था। कई वर्षों से आत्मधर्म हिन्दी और गुजराती के तंत्री पद पर रहकर आपने आत्मधर्म की अच्छी सेवा की है। सावरकुंडला में विशाल दिगम्बर जैन मंदिर का निर्माण भी आपके द्वारा हुआ है। परम पद की प्राप्ति में आप शीघ्र ही अग्रसर हों—ऐसी हमारी हार्दिक कामना.... *—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन, 'सम्पादक'*

आत्मधर्म के ग्राहकों से.....

[अपना वार्षिक चंदा भेजकर व्यवस्था में सहयोग दीजिये]

प्रिय महानुभाव!

(१) आपका वार्षिक चंदा आगामी चैत्र मास में पूरा हो रहा है। कृपया, नये वर्ष का चंदा ३) तीन रुपये मनीऑर्डर से भिजवा दें ताकि नये वर्ष का अंक आपको समय पर मिल सके।

(२) यदि आप चाहें तो अपना चंदा अपने यहाँ के मुमुक्षु मंडल द्वारा भी भिजवा सकते हैं। (जिन-जिन नगरों में मुमुक्षु मंडल हैं, वे अपने नगर के ग्राहकों का चंदा एकत्रित करके ड्राफ्ट द्वारा भिजवायें तो व्यवस्था में विशेष सुविधा रहेगी।)

(३) अपना पूरा नाम और पता जिला-तहसील के साथ स्पष्ट अक्षरों में लिखें। जिससे आपका अंक नियत समय पर मिलता रहे।

(४) संस्था की ओर से वी.पी. नहीं की जाती; परंतु जो ग्राहक वी.पी. से अंक मंगवाना चाहते हों वे हमें पत्र द्वारा सूचित करेंगे तो वी.पी. से अंक भेजा जायेगा।

(५) एकबार में सिर्फ एक ही वर्ष का चंदा लिया जाता है। इसलिये संवत् २०२५-२६ के एक वर्ष का ही चंदा ३) तीन रुपये भेजिये।

(६) आप अपने मित्रों या स्नेहियों को आत्मधर्म का ग्राहक बनाना चाहते हों तो उनका पूरा पता हमें भेजिये... हम उन्हें नमूने की एक प्रति बिना मूल्य भिजवा देंगे।

आशा है आपका सहयोग हमें प्राप्त होगा।

पता :—

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	'' '' '' भाग-२	१.००
	'' '' '' भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक (ढूंढारी भाषा में) (सस्ती ग्रंथमाला दिल्ली)	२.२५
१९	टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२०	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२१	बालबोध पाठमाला	०.५०
२२	वीतरागविज्ञान पाठमाला	०.६५
२३	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२४	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२५	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :

मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)